१२। अग्रिम मूल्य आपके परमानन्द स्थान में है।

१३। पश्चात् मूल्य आप के क्लेश-स्थान में है।

१४। प्रेस (छापाख़ाना) आप के मन्दिर स्थान में है।

१५। छापने की कल, या मैशीन, आप के मातृ-स्थान में है।

१६। छापनेवाले, प्रेसमैन, या मैशीनमैन, आप के पितृस्थान में हैं।

१७। टाइप आपके अस्थि स्थान में है।

१८। स्याही आपके शोणित स्थान में है।

१९। काग़ज़ आपका स्थूल और लेख आपका सूक्ष्म शरीर है।

२०। अन्तरात्मा आपका धर्म्म, अथवा धर्म्म के नाम से जो कुछ आप समझते हैं, वह है। उसके ख़िलाफ़ किसीके कुछ कहने, या उस पर दोषों का आरोप करने, से आपकी आत्मा तड़पने लगती है; जलते हुए अङ्गारों से भुन सी जाती है। कुछ शान्त होने पर जो आप सन्निपात का ऐसा delirium शुरू करते हैं तो बरसों आपका मुंह नहीं बन्द होता। धर्म्म पर आघात, व्याघात, प्रतिघात और प्रत्याघात का शोर मचाते हुए लेख लेख लेख—लेख पर लेख, आप लिखते ही चले जाते हैं।

२१। पालिसी आपकी घोर अन्धकार में पड़े रहना; पर दूसरों को उजेले में खींच लाने के लिए जी जान से उतारू रहना; मज़मून पर मज़मून लिखते जाना; भारत के ग़ारत होने, पुरानी रीति रवाज के डूबने और अङ्गरेज़ी शिक्षा के पेड़ में कड़वे फल लगने की आठ पहर चौंसठ घड़ी पुकार मचाना; और समुद्र-यात्रा का नाम सुनते ही जाल में फंसे हुए हिरन की तरह घबरा उठना है।

२२। विद्वत्व आपका वह है, जिसे, दत्त, तिलक और टीबो वग़ैरह के, आपकी समझ के ख़िलाफ़ कुछ कह डालने पर, आप प्रकट करते हैं। फिर चाहे आप वेद का एक मंत्र भी सही सही न बांच सकें, अथवा दर्शन, पुराण, स्मृति और उपनिषदों की एक सतर का भी मतलब न समझ सकें, पर आप ऐसी ऐसी तर्कना, वितर्कना और कुतर्कनायें करते हैं; और ऐसी ऐसी आलोचना, पर्य्यालोचना और समालोचनायें लिखकर इन लोगों के धुरें उड़ाते हैं; कि आपकी पाण्डित्य-प्रभा संसार के सारे संस्कृत पण्डितों की आखों में चकाचौंध पैदा कर देती है।

२३। अन्नदाता आपके मुरादाबाद और झांसी के मित्र, गुप्त और प्रसुप्त इत्यादि प्रकट, अप्रकट और प्रकट प्रकट नामधारी विज्ञापनबाज़ हैं। इन कोकशास्त्री, रतिशास्त्री, और कामशास्त्री जीवों के दर्शन अन्धोखोपड़ी के आदमियों को बहुत ही दुर्लभ हैं। कई वर्ष हम मुरादाबाद में रहे; और झांसी में भी हमने अनेक चक्कर लगाये; परन्तु इन पुण्यात्माओं का दर्शन हमें नसीब न हुआ।

२४। जीवनी-शक्ति आपको सैकड़ों तरह के ताम्बूलविहार के; हज़ारों तरह के उपदंशहारक, प्रमेहमारक, शुक्रकारक दवाओं के; लाखों तरह के बीसा, पचोसा, तीसा यन्त्र और उड्डीस, साबर, वृहत्साबर, महावृहत्साबर तन्त्रों के अजीब अजीब विज्ञापन हैं।

२५। बल आपका उपहार है। अगर आप उपहार को बाँट कर अपने बल को क़ायम रखने या बढ़ाने की चेष्टा पर चेष्टा न करते रहें तो शीघ्रही आपको घुटने थामकर उठने, या खड़े रहने, की ज़रूरत पड़े। इसीलिए आपको उपहार का बहुत बड़ा ख़याल रहता है; और उसकी तारीफ़ लिखने में आप सहस्रबाहु हो जाते हैं।

२६। खेल आपका टेबल, आलमारी, ताक़, सन्दूक़ और चारपाई पर पड़े हुए सामयिक साहित्य, पुस्तक, ग्रन्थ, किताब, अख़बार वग़ैरह की समालोचना है। खेल क्या यह आपकी एक अद्भुत लीला है। कभी आप किसी किताब की छपाई की

तारीफ़ करते हैं; कभी उसके काग़ज़ की; और कभी उसके लिखनेवाले की। भूल से कभी आप उसके गुण दोष की भी एक आध बात कह डालते हैं। एक बात आप में अजीब है। वह यह कि अंगरेज़ी चाहे आप राम का नाम ही जानते हों; पर ज़रूरत पड़ने पर बेकन, बाइरन, कारलाइल, मिल्टन और शेक्सपियर के ग्रन्थों का भी मर्म, आप ख़ूब समझ लेते हैं और समझा भी देते हैं। वेदों पर भी आप व्याख्यान दे डालते हैं; दर्शन-शास्त्रों का सिद्धान्त भी आप समझ लेते हैं; इंगलैंड तथा हिन्दोस्तान के बड़े बड़े विद्वानों की पोलिटिकल वक्तृताओं को भी आप अपने आलोचना-कुठार से काट कर छिन्न भिन्न कर डालते हैं।

२७। देशोपकार आपका पुत्र; धर्म्मरक्षा आपकी कन्या; अच्छी अच्छी पुस्तकों की प्राप्ति आप की पत्नी; और ऐसी वैसी पुस्तकें और ओषधियां आपकी दासियां हैं।

२८। सम्पादक आपके दोस्त और मुफ़ पढ़नेवाले आपके जानी दुश्मन हैं।

२९। पताका आपका हिन्दोस्तान की हित-चिन्ता; नक़ारा आपका अज्ञान की गहरी नींद में सोये हुओं को जगाना; पराक्रम आपका सनातन धर्म्म को साफ़सड़क से भटके हुओं को रास्ता बतलाना है।

३०। ऐसे आपके इस व्यापक विराट् रूप का हम त्रिकाल ध्यान करते हैं। आपकी तीन त्रिगुणात्म मूर्तियां हैं—प्रत्याहिक, साप्ताहिक और पाक्षिक। मासिक और त्रैमासिक आपके लीलावतार हैं। ऐसे लीलामय आपके विकट विराट् रूप को छोड़ कर हम—"कस्मै देवाय हविषा विधेम ?"

स्तावकास्तव चतुर्मुखादयो
भावुकाश्च भगवन् भवादयः।
सेवकाः शतमखादयः सुरा
'वृत्तपत्र'! यदि, के तदा वयम् ?

कमलाकिशोर त्रिपाठी।

पुस्तक-परीक्षा।

हमारी एडवर्ड-तिलक-यात्रा। इस पुस्तक को हाथ में उठाते ही हृदय आनन्द से उच्छ्वसित हो उठता है। यदि एक भी ऐसी पुस्तक साल भर में निकल जाय तो हमारी निर्जीव-प्राय हिन्दी में कुछ तो सजीवता आजाय। पाठक, आप ठाकुर गदाधरसिंह को जानते हैं; अथवा "चीन में तेरह मास' नाम की पुस्तक आपने पढ़ी है। यदि न पढ़ी हो तो कृपा करके मार्च १९०२ की सरस्वती ही देख लीजिए। उसमें इस पुस्तक की संक्षिप्त समालोचना प्रकाशित हुई है। हिन्दी के समाचारपत्रों ने तो की ही है; ऐडवोकेट और इण्डियन मिरर आदि अङ्गरेज़ी के अख़बारों ने भी उसकी लम्बी लम्बी समालोचनायें करके ख़ूब तारीफ़ की है। यहाँ तक कि युक्त प्रान्त की ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट तक में उसकी समालोचना छपी है। इसी पुस्तक के कर्त्ता, ठाकुर गदाधर सिंह, ने यह एडवर्ड-तिलक यात्रा लिखी है। उसको आपने अपनी चीनवाली पुस्तक से भी अधिक मनोरञ्जक कर दिया है। हमारे राजराजेश्वर का तिलकोत्सव कैसा विराट् समारम्भ था, यह वाचकों को अच्छी तरह विदित है। उसके आँखों देखे वर्णन का ऐसा अच्छा चित्र इस पुस्तक में खींचा गया है और लण्डन की अजीब अजीब चीज़ों और इमारतों का ऐसा हृदयहारी दृश्य नेत्रों के सम्मुख लाया गया है, कि पुस्तक को हाथ में लेकर फिर उसे कदापि रखने को जी नहीं चाहता। इसे ठाकुर गदाधरसिंह ने सारी हिन्दू जाति को अर्पण किया है। अतएव इसको स्वीकार करना हिन्दुओं को सर्वथा उचित है। इसकी भाषा यदि ज़रा और सरल होती तो सोने में सुगन्ध आजाती। डबल क्राउन काग़ज़ के १६ पेजी सांचे की इस जिल्द बँधी पुस्तक में क़रीब ३०० पृष्ठ हैं। पर मूल्य इसका सिर्फ़ १० आने है। ऐसी अच्छी और इतनी बड़ी पुस्तक का इतना कम मूल्य आश्चर्य्य की बात है। मैनेजर, आरमी। प्रेस, कानपूर को लिखने से यह पुस्तक मिलती है।

मानस-पत्रिका। काशी से मानस-पत्रिका नाम की एक नई मासिक-पत्रिका सितम्बर १९०४ से निकलने लगी है। इसके सम्पादक हैं—"महा-महोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ग्रैार साहित्योपाध्याय पण्डित श्री सूर्यप्रसाद मिश्र"। एक दिन हम अपने एक मित्र के यहाँ बैठे थे कि उन्होंने इस पत्रिका की पहिली संख्या हमको दिखलाई। देखतेही आनन्द, आश्चर्य ग्रैार कौतूहल आदि कई भाव हमारे हृदय में उदय हो आये। आनन्द इस कारण हुआ कि इसमें तुलसीदास की कविता का संस्कृत में जो अनुवाद सुधाकरजी ने प्रकाशित किया है वह बहुत ही सरस सरल ग्रैार हृदयहारी है। तुलसीदास ने जो छन्द प्रयोग किया है वही छन्द संस्कृत-अनुवाद में भी रक्खा गया है; यह ग्रैार भी विशेषता है। आश्चर्य इसलिए हुआ कि कभी कभी बड़े बड़े विद्वान् भी निरे निरुपयोगी काम में लग कर अपने समय, परिश्रम ग्रैार कदाचित् धन का भी दुरुपयोग करने लगते हैं। कौतूहल इसलिए उत्पन्न हुआ कि इस पत्रिका में तुलसीदास की कविता के अजीब अजीब अर्थ किये गये हैं—ऐसे अजीब कि एक प्रकार के अर्थ की युक्तियां, कहीं कहीं, दूसरे प्रकार के अर्थ की विरोधी तक हैं।

इस पत्रिका का उद्देश्य है—"श्री तुलसीदास जी के रामायण पर खण्डन मण्डन सहित अनेक प्राचीन ग्रैार नवीन विद्वानों के व्याख्यान" प्रकाशित करना। इस, पहले अङ्क, के साथ एक विज्ञापन भी बँटा है। उसमें एक जगह लिखा है—"बहुत स्थानों में ग्रन्थकार का अभिप्राय न समझ बहुतों ने कवि के हृदयङ्गत भाव को बिगाड़ दिया है"। इससे ज़ाहिर होता है कि कवि का हृदयङ्गत भाव ठीक ठीक बतलाने ही के लिए इस पत्रिका ने काशी ऐसी पवित्रपुरी में जन्म लिया है।

हमारी क्षुद्र बुद्धि में यह आता है कि कवि हमेशा एक मुख्य भाव को हृदयङ्गत करके पद्यरचना करता है। लक्षणा-व्यञ्जना से अन्य अर्थ का बोध होना दूसरी बात है। कभी कभी स्थल-विशेष में कवि जान बूझ कर भी कई अर्थों के बोधक पद्य लिखता है; जैसे संस्कृत में नैषधचरित का पञ्चनली नाम स्थल। अथवा वह कभी कभी पुस्तक की पुस्तक ही प्रतिज्ञापूर्वक द्वयर्थिक कर देता है; जैसे संस्कृत में राघवपाण्डवीय ग्रैार राघवार्जुनीय काव्य। परन्तु यह नहीं होता कि बिना कारण, एक नहीं अनेक, सो भी विरोधी, भावों को लेकर कोई बड़े बड़े काव्य बनाने बैठे। जो कवि हैं; अथवा, श्रीमान् सुधाकरजी की तरह, जो कविता लिखते हैं, वे, हमको विश्वास है, यह कभी न स्वीकार करेंगे, कि दस पाँच भिन्न भिन्न ग्रैार विरोधी भावों को एक पद्य में प्रविष्ट कर देने का कोई परिश्रम उठाता होगा। ग्रैार, यदि, उठाना भी चाहे तो उस की चेष्टा व्यर्थ हो जाय; क्योंकि ऐसा होना प्रायः असम्भव है।

कोई कोई शायद यह कहेंगे कि तुलसीदास महात्मा थे; वे सब कुछ कर सकते थे। पर, हमारी प्रार्थना है कि दस दस पाँच पाँच भावों से गर्भित पद्यों की रचना करके शाबाशी लेने की तुलसीदास को बिलकुल परवा न थी। वे भक्त थे; राम के अनन्य उपासक थे। उनकी कविता प्रासादिक है। स्वाभाविक रीति पर मुख्यतया एक ही भाव को हृदयङ्गत करके उन्होंने रामायण लिखी है। भक्ति के उद्रेक में उन्होंने सीधी सादी, एक ही भाव की बोधक, कविता की है। यों, कहीं कहीं, अक्षर-वैचित्र्य के कारण, अनायास, एक से अधिक भाव की गमक सूचित हो तो वह बात ही दूसरी है। कवियों की वाणी में यह हुआ ही करता है। पर, यह नहीं, कि—'जो सुमिरत सिधि होइ" से लेकर सब कहीं, एक एक पंक्ति में, दो दो चार चार भाव उन्होंने जान बूझ कर रख दिये हों।

अब देखिए, "कवि का हृदयङ्गत भाव" मानस-पत्रिका में किस तरह समझाया गया है। पहलाही सोरठा लीजिए—

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिवर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥

अभी तक इसका अर्थ लोग यह समझते थे कि—जिस गण-नायक के स्मरण से सिद्धि होती है वह अनुग्रह करै। पर सुधाकर जी कहते हैं कि पुराना पाठ—"जेहि सुमिरत सिधि होइ"—ठीक नहीं। ठीक है—"जो सुमिरत सिधि होइ"। आपके मत में यह सोरठा गणेश के लिए है ही नहीं; है रामचन्द्र के लिए और इस नये अर्थ की कुञ्जी 'जो' शब्द है। 'जो' अर्थात् जिस रामचन्द्र के स्मरण से गणेशजी सिद्ध (!) हो जाते हैं, वेही बुद्धिराशि और शुभ-गुण-सदन रामचन्द्र मुझ पर अनुग्रह करें। सिद्ध हो जाने का अर्थ यह न समझिए कि वे अपने भक्तों को सिद्ध हो जाते हैं; अथवा कार्य की सिद्ध कर देते हैं; नहीं, राम नाम के प्रभाव से वे स्वयं ही "सिद्ध होते हैं अर्थात् पूजे जाते हैं"!

दुनिया जानती है कि तुलसीदास के इष्टदेव रामचन्द्र थे। पर मानस-पत्रिका के सम्पादक पण्डित सूर्यप्रसाद गणेश को उनके इष्टदेवता बतलाते हैं, और कहते हैं कि इसी लिए इन्होंने गणेश की पहले वन्दना की है। आप कहते हैं—

"ग्रन्थ बनाने में किसी प्रकार का बिघ्न न हो और "निर्विघ्न ग्रन्थ की समाप्ति हो इसी कारण ग्रन्थ-"कार ग्रन्थ के आदि में अपने इष्टदेव की वन्दना "करते हैं। गोसाईं जी ने भी इसी अभिप्राय से "यह वन्दना की"।

सुधाकर जी साहित्योपाध्याय जी के अर्थ को काटते हैं और साहित्योपाध्याय जी सुधाकर जी के अर्थ को। सुधाकर जी कहते हैं कि इस सोरठा में कवि ने गणेश के लिए 'वन्दे' नहीं लिखा; केवल 'स्मरण' शब्द का प्रयोग किया है। पण्डित सूर्यप्रसाद कहते हैं 'स्मरण' शब्द का प्रयोग करके कवि ने यह सूचित किया कि मैं आपकी वन्दना ही करने के योग्य नहीं हूं। "यदि आप अनुग्रह करें और मैं राम-चरित लिखूं, तब वन्दना के योग्य होऊंगा"। पर सबसे पहले ही कवि ने जो "वन्दे वाणीविनायकौ" कह डाला है उससे तो जान पड़ता है कि गणेश के लिए, स्मरण और वन्दन, दोनों की वे ज़रूरत समझते थे; और अपने को इतना अधम भी न समझते थे कि मैं गणेश की वन्दना करने के लायक़ ही नहीं।

और सुनिये। पण्डित सूर्यप्रसाद लिखते हैं—"सोरठे से जो गोसाईं जी ने ग्रन्थ का आरम्भ किया, इससे यह व्यञ्जित होता है कि इस ग्रन्थ की चर्चा दिन दिन बढ़ती जायगी, क्योंकि सोरठा में वृद्धिक्रम होता है"। पण्डित जी का शायद यह मत है कि इस सोरठा के पहले वे जो कई श्लोक हैं उनको ग्रन्थ में शामिल ही न समझो। क्योंकि शामिल समझने में सोरठा से ग्रन्थ आरम्भ होने की युक्ति बरबाद जायगी। यह हुआ। आपने वृद्धि क्रमवाली बात भी अपूर्व कही है। कैान ऐसा होगा जो यह न चाहैगा कि उसके ग्रन्थों का प्रचार बढ़ता जाय। यदि तुलसीदास का "हृदयङ्गत भाव" वही था जो आप बतलाते हैं तो उन्होंने अपने सब ग्रन्थों के आरम्भ में सोरठा ही क्यों न रख दिया? "गाइए गणपति जगवन्दन" इत्यादि के झगड़े में वे क्यों पड़े? सो, जग (संसार) भर को तुलसीदास गणेश के वन्दन (वन्दना) करने के योग्य समझते हैं; पर अकेले अपने को नहीं! जैसे वे संसार से बाहर हों! जान पड़ता है पूर्वोक्त पण्डित जी महाशय ने, तुलसीदास के हृदय के भीतर घुस कर, उनका भाव निकाल लिया है। गुरु का नाम नहीं लिया जाता। पण्डित सूर्यप्रसाद जी के मत में तुलसीदास "गननायक" को अपना गुरु समझते थे। इसी लिए उनका मुख्य नाम "गणेश" उन्होंने नहीं लिया। उसकी जगह गननायक कहा। गणपति और गणनायक गणेश के 'साक्षात्' नाम नहीं! 'साक्षात्' नाम केवल 'गणेश' है!!!

बनारस में वन्दन पाठक एक प्रसिद्ध रामायणी हो गये हैं। आप रामायण के ऐसे ऐसे अर्थ कहते थे कि सुननेवाले अचम्भे में आ जाते थे। रामायण के शङ्कासमाधान से भरी हुई उन्होंने 'मानस-शङ्कावली' नाम की एक पोथी लिखी है। उसे प्रकाशित हुए कोई ४० वर्ष हुए। उन्होंने इस सोरठा

का जो अर्थ निकाला है वह भी मानसपत्रिका के सम्पादकों ने लिख दिया है। उसे भी सुन लीजिए। "गननायक करिवरवदन" का आपने पदच्छेद किया है—"गनना यक करि वरवदन"! अब आप की की हुई इसकी व्याख्या सुनिए—

"जो गनना यक अर्थात् गगना (गनना ?) याने "गिनती में एक प्रथम, अर्थात् जब बनिए अन्न "तौलने लगते हैं तब पहिले यही कहते हैं कि "'राम हो राम'—सो गनना यक राम जी हुए "वे वर कहिए श्रेष्ठ बदन हैं सो सुमिरित होइ "सिधि-करि सोई राम बुद्धि रासि सुभगुन-सदन "अनुग्रह करहु।"

धन्य वन्दनजी! आप को शतवार वन्दन है! बनिये यदि गणेश का स्मरण न करें तो तुलसीदास भी न करने पावें। उनके सीधे सादे गणेश-स्मरण विषयक सोरठे का आपने अजब तरह का अर्थ बतलाया। एक पण्डित ने महिम्न स्तोत्र का अर्थ विष्णु पर घटित कर दिया है। सम्भव है, कोई पण्डित ऐसा उत्पन्न हो जो तुलसीदास के समग्र रामायण का अर्थ रावण पर घटा दे। प्रयाग में एक ऐसे पण्डित हुए भी हैं। वे रामायण का अर्थ रावण पर घटा देते थे। इसी से आप का नाम पड़ गया था—"रावण महाराज" आप लखनऊ के रहनेवाले थे।

यह पहले सोरठे के भाव हैं। सबकी समालोचना हमने नहीं की। अभी कई भाव इसके बाक़ी हैं। तुलसीदास को अपनी इन दो सतरों के इतने और इस तरह के अभूतपूर्व भाव शायद स्वप्न में भी न सूझे होंगे। पर ये सब "कवि के हृदयङ्गत भाव" हैं! इन भावों को कोई बिगाड़ न दे इस लिए यह पत्रिका निकली है। इसके सम्पादक इसी तरह समग्र रामायण के भाव बतलावेंगे। जिसको ऐसे ऐसे भाव सुनकर तुलसीदास के रामायण का सच्चा अर्थ जानना हो वह २॥) रु० बनारस भेजकर महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी या पण्डित सूर्यप्रसाद मिश्र से यह पत्रिका साल भर लिया करे।

✻

The Brahmans.—दैनिक पत्र "हिन्दोस्थान" के जाइण्ट यडिटर पण्डित शीतलप्रसाद उपाध्याय कृत। पुस्तक अङ्गरेज़ी में है। पृष्ठ-संख्या ३२। बनारस के एक गुप्त महाशय ने "स्वार्थान्धप्रकाशिका" नाम की पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें ब्राह्मणों की घोर निन्दा है। उसके सम्बन्ध में बहुत दिनों से कोलाहल हो रहा है। यह अङ्गरेज़ी पुस्तक उसी अन्धप्रकाशिका का प्रतिवादरूप है। पण्डित शीतलप्रसाद ने उसके आक्षेपों का खण्डन बहुत योग्यता से किया है। यह बात बिलकुल ही असम्भव जान पड़ती है कि कोई जाति की जाति, या समुदाय का समुदाय, ही निन्द्य हो। जो मनुष्य इस बात को साबित करने की कोशिश करता है वह मानो डङ्के की चोट पर यह पुकार कर कहता है कि उसका अन्तःकरण पक्षपात या ईर्षा की ज्वाला से दग्ध है; वह भीतर की और बाहर की—दोनों—आँखों से ख़ुद अन्धा है; और, इस प्रकार की निन्दा में, उसका कोई बहुत बड़ा स्वार्थ है। स्वार्थान्धप्रकाशिका का खण्डन करने के लिए बहुत समय और बहुत स्थान दरकार है। परन्तु "The Brahmans" के कर्त्ता ने थोड़े में इस बात को अच्छी तरह दिखलाया है कि जिन ब्राह्मणों का सिद्धान्त था—

यजनयाजनदानप्रतिग्रहः

वे स्वार्थान्ध न थे; जिन्होंने द्विजाति-मात्र के लिए वेदाध्ययन का नियम किया था वे स्वार्थान्ध न थे; जिन्होंने राज्य और वाणिज्य के ऐश्वर्य्य का ज़रा भी ख़याल न करके कौपीन-धारण-पूर्वक पर्णकुटीरों में रहना स्वीकार किया था, वे स्वार्थान्ध न थे! देश-काल की व्यवस्था में अन्तर आजाने से, पीछे पीछे से, अगर कुछ ब्राह्मणों के आचरण निन्द्य हो गये तो क्या उससे यह सिद्ध हुआ कि

प्रारम्भ ही से सब ब्राह्मणों का आचरण निषिद्ध था? पण्डित शीतलप्रसाद जी की दो एक बातों से हम सहमत नहीं; परन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि उन्होंने ब्राह्मणों के पक्ष का समर्थन बहुत अच्छी तरह किया है और प्रमाणपूर्वक किया है। जिन्होंने स्वार्थान्धप्रकाशिका को देखा है उन्हें इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए। इसका अनुवाद यदि हिन्दी में हो जाता तो बहुत अच्छा होता।

❋

हिन्दी की पहली, दूसरी और तीसरी पुस्तक। लाला मूलराज यम० ए० कृत। मुफ़ीदे आम प्रेस, लाहौर, से प्राप्य। मूल्य क्रम से ॥, ⌒, और ⌒ आने। इन पुस्तकों के कर्त्ता विद्वान् पुरुष हैं। आप "प्रेमचन्द रायचन्द स्टूडेण्ट" हैं। इस समय आप स्यालकोट में डिविज़नल जज हैं। पञ्जाब में, जहां उर्दू और फ़ारसी ही की प्रधानता है, आपका हिन्दी में पुस्तक रचना करना हमारे लिए आनन्द और हिन्दी के लिए गौरव की बात है। इन पुस्तकों में से पहली और दूसरी तो पञ्जाब के मदरसों में कहीं कहीं पढ़ाई जाती है; परन्तु तीसरी अभी छपी है। आशा है इसे भी पञ्जाब का विद्या-विभाग पसन्द करैगा। पुस्तकें बड़ी योग्यता से लिखी गई हैं। विषय इनके सब उपयोगी हैं। भाषा भी बहुत सरल है; जिस क्लास के लिए जो पुस्तक है भाषा उसके अनुकूल है। पुस्तकों में पद्य की कमी है और कहीं कहीं भाषा सदोष हो गई है। पिदड़ी और सौदाई इत्यादि शब्द सब कहीं प्रचलित नहीं हैं। बस, इनमें दोष की मात्रा इतनी ही है।

❋

प्राणपरिवर्तन। यह "मेस्मेरिज़्म" की पुस्तक है। इस विद्या को हिन्दी में अध्यात्म या प्राणविनिमय विद्या कह सकते हैं। यह एक गुजराती पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद है। मूल पुस्तक के कर्त्ता श्रीयुक्त मणिलाल नभुभाई द्विवेदी, बी० ए०, थे। वे अब नहीं हैं। वे गुजराती के बहुत अच्छे लेखक हो गए हैं। अनुवादक का नाम अमृतलाल केशवलाल नायक है। आप अहमदाबाद के रहनेवाले हैं। आपका सम्बन्ध एक नाटक कम्पनी से है। उस कम्पनी के साथ उत्तर हिन्दोस्तान में भी आपने भ्रमण किया है। इसी कारण आप में हिन्दी की प्रीति विशेषता के साथ जागृत हो उठी है। गुजरातवालों का हिन्दी पर प्रेम दिखलाना उसके लिए सौभाग्य की बात है। हम अनुवादक के उद्योग और हिन्दी प्रेम की प्रशंसा करते हैं। प्राण परिवर्तन जिस विषय की पुस्तक है वह विषय बड़े महत्व का है। वह कष्टसाध्य भी है। मूल ग्रन्थकार ने इस विषय में बहुत कुछ विज्ञता प्राप्त की थी। उन्होंने अपनी पुस्तक में इस विषय को लिखा भी बड़ी योग्यता से है। यह अनुवाद, अनुवादक जी से १) में मिलता है। उनका पता—आलफ़्रेड नाटक कम्पनी, ग्राण्टरोड, बम्बई है। अनुवादक की भाषा इत्यादि के वैगुण्य का विचार न करके हिन्दी जाननेवालों को चाहिए कि वे उनके उत्साह को बढ़ावें।

❋

पन्नाराज्य का इतिहास। बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त द्वारा बँगला भाषा से अनुवादित। भारतजीवन प्रेस, बनारस, से ३ आने में प्राप्तव्य। इसे पन्नाराज्य का इतिहास तो नहीं कह सकते। किन्तु १९०१ ई० में महाराजा पन्ना पर अपने चचा रावराजा खुमानसिंह को विष दिलाने का जो अभिशाप लगाया था उस मुकदमें का इतिहास यह अवश्य है। बँगला में इस पुस्तक का नाम "पन्ना के महाराजा" है। वही नाम यदि हिन्दी में भी रख दिया जाता तो अच्छा होता। पुस्तक सुपाठ्य और मनोरञ्जक है। इसके पढ़ने से मुकदमें का पूरा पूरा हाल मालूम हो जाता है। इस में जहां कहीं नौगाँव का नाम आया है वहां नौगञ्ज लिखा है। यह भूल है। इस छावनी का नाम नौगाँव या नया गाँव है। अंगरेज़ इसे Nowgong लिखते हैं और असली नाम को न जाननेवाले बंगाली लेखक भी उसे अंग्रेज़ों के अनुकरण में नौगञ्ज ही लिखते हैं। परन्तु बाबू गङ्गाप्रसाद

को इस अशुद्धि का शोध लेना उचित था। एक और भूल इस पुस्तक में है। इसके पाँचवे पृष्ठ में वह प्रसिद्ध दोहा है जिसे छत्रशाल ने बाजीराव पेशवा को भेजा था। उसके अन्तिम भाग "बाजी राखो लाज" का अर्थ किया गया है—"हे बाजीराव, तुम उनकी (बुन्देलों की) लज्जा निवारण करो।" कहने की आवश्यकता नहीं, 'लज्जा रखना' और 'लज्जा निवारण करना'—ये दो वाक्य दो विपरीत अर्थों के बोधक हैं। किसीको लज्जा निवारण करना उसे निर्लज्ज बनाना है!

महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य, एम० ए०

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

१६०४

भाग ५] दिसम्बर, १६०४ [संख्या १२

विविध विषय।

ऋग्वेद की जो भाषा है वह आर्य्यों की भाषा का सबसे पुराना नमूना है। वैदिक-काल में इस देश के पश्चिमोत्तर प्रान्त में जो भाषा बोली जाती थी, ऋग्वेद की ऋचायें प्रायः उसी भाषा में हैं। परन्तु इस प्राचीन भाषा में भी, कहीं कहीं, अन्तर है। सर्वत्र एकता नहीं है। यह भाषा धीरे धीरे उस रूप में बदल गई जो रूप उसका स्मृति, पुराण और प्राचीन काव्यों में पाया जाता है। यह लिखने की, अथवा पुस्तकों की, भाषा थी। जैसे जैसे आर्यों का विस्तार बढ़ता गया, उनकी बोली में भी भेद होता गया। क्रम क्रम से उसे वह रूप प्राप्त हुआ जो अशोक के समय के शिला-लेखों में पाया जाता है। अशोक ईसा के २५० वर्ष पहले हुआ है। आर्यों की भाषा के इस रूप का नाम पाली है। कुछ काल में इसके भी दो भेद हो गये—एक पूर्वी पाली; दूसरी पश्चिमी पाली। बौद्धों के धर्म्म-ग्रन्थ बहुत करके इन्हीं भाषाओं में हैं।

***

इसके ५०० वर्ष पीछे पाली से प्राकृत उत्पन्न हुई। प्राकृत का अर्थ स्वाभाविक है। अर्थात् जो भाषा स्वभाव ही से उस रूप को प्राप्त हुई वह प्राकृत कहलाई। उसका और अप्राकृत, अर्थात् परिमार्जित, संस्कृत का जोड़ हुआ। प्राकृत के नमूने नाटकों में, उस समय के शिला-लेखों में और जैनों के ग्रन्थ-साहित्य में विद्यमान हैं। जब उसका प्रचार बढ़ा तब विद्वानों का ध्यान उस तरफ़ गया। उन्होंने उसका व्याकरण बनाया। यह ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी की बात हुई।

***

धीरे धीरे प्राकृत के दो बड़े विभाग हो गये—एक पूर्वी प्राकृत; दूसरी पश्चिमी प्राकृत। पूर्वी प्राकृत का नाम हुआ मागधी और पश्चिमी का सौरसेनी। मागधी पटना प्रान्त की भाषा हुई और सौरसेनी

गङ्गा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश की। मागधी और सौरसेनी ने मिलकर एक तीसरे ही प्रकार की भाषा पैदा कर दी। उसका नाम अर्द्ध-मागधी हुआ। उसने विशेष करके अवध में प्रभुत्व पाया। इनमें से सौरसेनी वर्तमान ब्रजभाषा और हिन्दी की; अर्द्ध-मागधी अवध, बघेलखण्ड और छत्तीसगढ़ में प्रचलित बोलियों की, और मागधी पूर्व की तरफ़ प्रचलित भाषाओं की भाषा हुई।

* *
*

अवध, बघेलखण्ड और छत्तीसगढ़ की बोलियों का नाम डाकृर ग्रियर्सन ने पूर्वी हिन्दी रक्खा है और युक्त-प्रान्त की बोली का पश्चिमी हिन्दी। बङ्गाल हाते में, इस समय, मागधी की चार कन्यायें हैं—बिहारी, बँगला, उड़िया और आसामी। इन्हीं सब भाषाओं और बोलियों का विस्तृत वर्णन डाकृर ग्रियर्सन ने अपनी Linguistic Survey of India नामक ग्रन्थ-माला में किया है।

* *
*

हिन्दोस्तान में एक देशव्यापी भाषा करने की बात आज तक बहुत कम लोगों को सूझी है। और जिसे सूझी भी है उसने एक आध लेख लिखने के सिवा और कोई प्रयत्न नहीं किया। प्रयाग से "चतुर्भाषी" निकलनेवाला था; परन्तु उसकी सब भाषाओं के लिए योग्य सम्पादक ही न मिले। कुछ ऐसे सङ्कीर्ण-हृदय महात्माओं से काम पड़ा जिन्होंने अपनी मातृभाषा के सामने हिन्दी को तुच्छ समझकर देश भर में एक भाषा होने के लाभ का कुछ भी ख़याल न किया। हाँ "भारतधर्म्म" ने त्रैभाषिक होकर इस विषय का सूत्रपात किया है। यह बहुत अच्छा हुआ।

* *
*

भारत में एक भाषा करने की तरफ़ लोगों का ध्यान प्रायः बिलकुल ही नहीं है। यह बड़ा ही हतभाग्य देश है। परन्तु और देशवाले दुनिया भर में एक भाषा करने का दीर्घ प्रयत्न कर रहे हैं। उनको सफलता भी हुई है। रूस के डाकृर ज़ाम्यन-हाफ़ ने एक नई भाषा पैदा की है उसका नाम है "यस्पराण्टो" भाषा। यह भाषा निहायत सीधी है। इसके व्याकरण में सिर्फ़ १६ क़ायदे हैं। उन्हीं से सब काम निकल जाता है। उपसर्ग और प्रत्ययों के बल से एक शब्द के अनेक शब्द हो जाते हैं और सब पृथक् पृथक् अर्थ देते हैं। इस भाषा में वही वर्ण रक्खे गये हैं जो अँगरेज़ी भाषा में हैं। इसके शब्द उसी तरह लिखे जाते हैं जैसे कि वे बोले जाते हैं। कोई वर्ण इसमें ऐसा नहीं जिसका उच्चारण न होता हो या जिसका कई तरह से उच्चारण किया जाता हो। इसमें बहुत थोड़े शब्द हैं; परन्तु उतने ही से सब काम निकल जाता है। इसे योरप, एशिया, आफ़रीक़ा और अमेरिका—सब कहीं के रहनेवाले, थोड़ी मिहनत से लिख, पढ़ और बोल सकते हैं। हिन्दू, मुसल्मान और योरोपियन—सबके लिए यह तुल्य काम देनेवाली है। इसके शब्द लैटिन भाषा को धातुओं से बने हैं; इससे योरोपियन भाषाओं के जाननेवाले इसे औरों की अपेक्षा जल्द सीख सकते हैं।

* *
*

१८८७ में इस भाषा का सबसे पहले प्रचार हुआ। परन्तु इतने थोड़े अरसे में यह चीन से लेकर पीरू तक में प्रवेश कर गई है। सब कहीं इसका थोड़ा बहुत प्रचार हो गया है और प्रति दिन बढ़ता जाता है। जो काम, भिन्न भिन्न देशवाले, लैटिन और फ़्रेंच से ले रहे हैं वह बहुत जल्द अब इस भाषा से लिया जानेवाला है। तार का काम और "टाइप-राइटिङ्ग" वग़ैरह इस भाषा में बहुत अच्छी तरह से हो सकता है। दो सौ से अधिक किताबें इस भाषा में छप चुकी हैं और कोई एक दरजन अख़बार और मासिक पुस्तकें इसमें निकलती हैं। लण्डन में इसका एक स्कूल है। बड़े बड़े व्यापारियों ने इसे सीखना शुरू कर दिया है। सीखकर दूसरे देशवालों से वे इसी भाषा में पत्र-व्यवहार करेंगे। हिन्दोस्तान में इस भाषा का सब

से अधिक ज्ञान रखनेवाले मदरास हाते में सलेम के निवासी टो० आदिनारायण चेटियार हैं।

***

दक्षिण के कुर्ग इत्यादि प्रान्तों में बहुपतित्व की प्रथा जारी है। अर्थात् वहां एक स्त्री के एक ही साथ कई पति होते हैं। यह बात सरस्वती के वाचकों को बहुत करके मालूम होगी। परन्तु यह शायद विरलों ही को मालूम होगा कि संयुक्त प्रान्त में भी एक आध जगह एक स्त्री के अनेक पति होते हैं। देहरादून ज़िले में एक परगना जौनसार बावर है। वहां इस रीति का ख़ूब प्रचार है। सब भाइयों के वहां बहुधा एक ही स्त्री होती है। जब बड़ा भाई घर पर होता है तब स्त्री अकेले उसी की पत्नी हो कर रहती है। जब वह बाहर जाता है तब उसका छोटा भाई स्त्री का अधिकारी होता है। यदि दो से अधिक भाई होते हैं तो वे दिन को खेत वग़ैरह में काम करते समय उस स्त्री के साथ पति का व्यवहार करते हैं। भाइयों में से सबको इस बात का अधिकार रहता है कि यदि वे चाहें तो अलग किसी स्त्री से विवाह करलें। यदि कोई भाई दूसरी स्त्री से विवाह कर लेता है तो भी सब भाइयों की स्त्री में उसका हिस्सा रहता है। कभी कभी किसी किसी घर में ऐसी अनेक स्त्रियां होती हैं जिनमें सबका साझा होता है। १९०१ ईसवी की मनुष्यगणना की रिपोर्ट में लिखा है कि एक कुटुम्ब में ८ भाई थे—६ एक मा से और २ दूसरी से। पहले इन आठों भाइयों ने तीन स्त्रियों से विवाह किया। उनमें सबका साझा रहा। पीछे से एक भाई ने एक नई स्त्री की। कुछ दिनों में एक माके ६ भाइयों ने पहले की तीन स्त्रियों को अपनी कर ली और दूसरे २ भाइयों ने नई स्त्री को। इस तरह चारो स्त्रियां बांट ली गईं। दो बहनों को एकही साथ ब्याह लेने की भी वहां मनाई नहीं है। बहुपतित्व बहुधा वहीं प्रचलित रहता है जहां स्त्रियां कम और पुरुष अधिक होते हैं। जौनसार बावर में भी यह बात पाई जाती है। वहां प्रति एक हज़ार पुरुषों में सिर्फ़ ८१४ स्त्रियां हैं। तिबत में भी यही हाल है। वहां भी स्त्रियां कम और पुरुष अधिक हैं। इसीसे तिबत में भी बहुपतित्व की प्रथा है।

***

नये नये आविष्कार करने के लिए आज कल इटली ख़ूब मशहूर हो रहा है। बेतार की तारबर्क़ी चलानेवाले मारकोनी साहब वहीं के हैं। अब पीनो नामके एक विज्ञानी ने एक दूसरा ही अद्भुत आविष्कार किया है। उन्होंने हाइड्रसकोप नामक एक दूरबीन बनाया है। उससे समुद्र के भीतर की चीज़ें आँख के सामने आ जाती हैं। इस यन्त्र की सहायता से समुद्र के भीतर पड़े हुए मोती, मूंगा, और 'स्पञ्ज' इत्यादि बाहर से देख पड़ते हैं। डूबे हुए जहाज़ों में लदा हुआ सोना, चांदी सब कुछ बाहर निकाला जा सकता है। सामुद्रिक तार लगाना और समुद्र के भीतर जहाज़-मार नावों के तार जोड़ना, जो बहुत कठिन काम समझा जाता था, अब बिलकुल ही आसान हो जायगा। इस यन्त्र में एक लम्बी नली रहती है। उस नली का जो छोर समुद्र में डाला जाता है उसमें एक 'केमरा' रहता है। उसमें जो लेन्स रहते हैं उन पर समुद्र के भीतर पड़ी हुई चीज़ों के छायाचित्र, तद्वत्, उन्हींके रङ्गों में, उतर आते हैं। ये चित्र नली के ऊपरी छोर पर लगी हुई प्लेटों पर 'यनलार्ज' (बड़े) हो जाते हैं और मनुष्य उनको आसानी से देख सकते हैं। पीनो साहब ने, इस यन्त्र के साथ, यलीवेटर नाम का एक और यन्त्र बनाया है। इसको सहायता से समुद्र के भीतर पड़ी हुई चीज़ें बहुत जल्द और बहुत थोड़ी मेहनत से बाहर निकाली जा सकती हैं। इटली की गवर्नमेण्ट ने गत जनवरी में प्रोटोफीनो नामक बन्दरगाह में पीनो साहब के इन दोनों यन्त्रों की परीक्षा कराई। परीक्षकों ने परीक्षा के अनन्तर एक सरटीफ़िकट दी और उसमें लिख दिया कि अपने यन्त्रों के विषय में पीनो साहब जो कुछ कहते हैं सब सच कहते हैं। हम लोगों ने समुद्र के तल में पड़ी हुई चीज़ों को

वैसेही देख लिया जैसे बाहर पड़ी हुई चीज़ों को देखते हैं।

*
* *

अक्टोबर की सरस्वती में "करुणा और निष्ठुरता" नामक जो चित्र प्रकाशित हुआ है वह अकेले राजा रविवर्म्मा ही का बनाया हुआ नहीं है। उसे उन्होंने, और उनके भाई राजा राजवर्म्मा ने, मिलकर बनाया है।

सांवत्सरिक सिंहावलोकन।

आज सरस्वती पाँच वर्ष की हो चुकी। उसके पाँचवें वर्ष की यह अन्तिम संख्या है। १९०३ के आरम्भ में, जब हमने इसके सम्पादन-भार को अपने ऊपर लिया, तब इसका जितना प्रचार था, उससे अब प्रायः दूना हो गया है। यह हमारे लेखन अथवा सम्पादन-कौशल का फल नहीं। वह हम में है भी नहीं, और १९०३ की अपेक्षा इस वर्ष हमने कोई विशेष बात भी नहीं की। इस सफलता के मुख्य दो कारण हैं। एक तो सरस्वती के परमोत्साही प्रकाशकों का वर्द्धमान उत्साह और अध्यवसाय है। उन्होंने अनेक अधिक लाभदायक और अधिक आवश्यक कामों के रहते भी सरस्वती को छापने और उसके समय पर प्रकाशित करने में कोई त्रुटि नहीं होने दी। दूसरा कारण, सरस्वती के पाठकों की कृपा है। यदि हिन्दी के हितकारी, ये गुणग्राही सज्जन, अपना करावलम्ब न देते, तो सरस्वती की अवस्था बहुत ही शोचनीय हो जाती। अब यदि हमारे दयामय और मातृ-भाषा के प्रेमी पाठक सरस्वती पर ऐसी ही कृपादृष्टि बनाये रहे, तो, इसके चिरस्थायी होने के लिए जितनी सामग्री आवश्यक है उतनी के इकट्ठा हो जाने की अगले वर्ष पूरी आशा है। ईश्वर इस आशा को फलवती करे।

सरस्वती में जो चित्र प्रकाशित होते हैं तत्सम्बन्धी जैसा अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए वैसा अभी तक नहीं हो सका। इसका हमको और सरस्वती के प्रकाशकों को भी खेद है। कारण यह है कि हम कानपुर में रहते हैं; सरस्वती इलाहाबाद से निकलती है; और चित्र कलकत्ते में बनते हैं! लिखा जाना, चित्रों का बनना और छपना—यही तीन मुख्य काम हैं। सो वे तीनों, भिन्न भिन्न, तीन स्थानों में होते हैं। इसीसे चित्रों में कभी कभी त्रुटि रह जाती है। एक आध दफ़ा यहां तक हो गया कि चित्र-सम्बन्धी लेख छप गया; परन्तु चित्र का ब्लाक समय पर नहीं आया; या आया, तो इतना ख़राब आया, कि वह देने के योग्य न समझा गया। इस दोष को दूर करने का भी विचार हो रहा है।

परन्तु हमारी प्रार्थना यह है कि सरस्वती के विचारशील पाठक उसके लेखों की ओर अधिक ध्यान दें; चित्रों की ओर कम। लेख मुख्य हैं; चित्र गौण। तथापि दोनों बातों की यथासाध्य उन्नति के लिए चेष्टा करने का हम अभिवचन देते हैं; और यह भी, यहां पर, हम सूचित कर देना चाहते हैं, कि अगले वर्ष के लिए बहुत से चित्रों का अभी से प्रबन्ध हो गया है।

सरस्वती के अनेक पाठकों की सूचना यह है, कि यद्यपि इसकी भाषा पहले से सरल हो गई है, तथापि यदि वह और भी सरल हो जाय तो अच्छा हो। जैसी भाषा पढ़नेवाले चाहें, या जैसी वे समझ सकें, वैसीही का लिखा जाना उचित भी होता है। क्योंकि जिस भाषा, को क्लिष्ट होने के कारण, थोड़े ही मनुष्य समझ सकें उससे बहुत कम लाभ होता है। इसी कारण से इस वर्ष हमने सरस्वती की भाषा में अल्पाधिक परिवर्तन करना उचित समझा। कोई कोई लेख—उदाहरण के लिए, ईश्वर-विषयक नास्तिकास्तिक-सम्वाद—तो हमने बिलकुल ही उर्दू के ढङ्ग का कर दिया। परन्तु सब लेखों की भाषा इसी तरह की कर देना भी अभीष्ट नहीं। क्योंकि कितने ही लोग इस प्रकार की भाषा के प्रतिकूल हैं। तथापि जहां तक उचित होगा

सरस्वती की भाषा ग्रैार भी सरल करने का यत्न किया जायगा; ग्रैार दूसरी भाषाग्रों के भी सीधे सादे सर्व-प्रचलित, शब्द रखकर उसके अधिक बोधगम्य करने में कमी न की जायगी।

सरस्वती में छपने के लिए इतने लेख ग्राते हैं--उनकी इतनी भीड़ रहती है—कि उनके यथाक्रम छपने में बहुत देर होजाती है। इस देरी को सरस्वती के सहायक दयापूर्वक क्षमा करें। उनके जानने के लिए हम लिखते हैं कि १९०२ के ग्रन्त में विक्रमाङ्कदेवचरितचर्चा, नाट्यशास्त्र ग्रैार व्योम-विहरण ग्रादि बड़े बड़े लेख, जो स्वयं हमने लिखे थे, वे ग्रब तक पड़े हुए हैं। उनके लिए हम सरस्वती में स्थान ही नहीं दे सके। १९०३ ग्रैार १९०४ के, हमारे कितने लेख ग्रप्रकाशित पड़े हैं, इसकी तो बात ही नहीं। ग्रतएव लेखों के छपने में जो विलम्ब होती है उसके लिए हम सरस्वती के लेखक महाशयों से पुनर्वार क्षमा-प्रार्थना करते हैं। हमारा विचार है कि ग्रगले वर्ष सरस्वती में चुने हुए लेख, ग्रर्थात् जो विशेष उपयोगी ग्रैार मनोबोधक हों वही, छपें। ग्रतएव लेखों से सरस्वती की सहायता करनेवाले सज्जनों से प्रार्थना है कि ग्रब वे ग्रपने लेखों को पहले की ग्रपेक्षा ग्रधिक लाभदायक ग्रैार रोचक करने की कृपा करें।

१९०५ ईसवी में जयपुरनरेश महाराजा जयसिंह, रीवाँनरेश महाराजा रघुराजसिंह, प्रसिद्ध मूर्तिकार म्हातरे, डाक्टर ग्रियर्सन, श्रीयुक्त ग्राउस साहब इत्यादि विख्यात पुरुषों के सचित्र जीवन-चरित सरस्वती में प्रकाशित होंगे। विज्ञान ग्रैार साहित्य विषयक लेख भी ग्रगले वर्ष ऐसे प्रकाशित होंगे जो बहुत ही मनोरञ्जक ग्रैार बोधप्रद होंगे। ऐतिहासि लेख भी ग्रच्छे ग्रच्छे, रहेंगे। ग्रब से ऐसा प्रबन्ध हुग्रा है कि योरप ग्रैार ग्रमेरिका के प्रसिद्ध प्रसिद्ध सब सामयिक पत्र ग्रैार पुस्तकें सरस्वती को मिला करें, जिससे, समय समय पर, यह बात ज्ञात होती रहे, कि इन देशों के सम्पादक किस ढङ्ग से ग्रपने ग्रपने सामयिक पत्र निकालते हैं; किस प्रकार के लेख प्रकाशित करते हैं; ग्रैार कैान सी नई नई बातों का ग्राविर्भाव होता है। ग्राशा है कि इस प्रबन्ध से सरस्वती को बहुत लाभ होगा।

सरस्वती में पहले कुछ ऐसे सज्जन लिखा करते थे जिन्होंने ग्रब, दो वर्ष से, उसमें लिखना बिलकुल ही बन्द कर दिया है। शायद सरस्वती ग्रब उनके लिखने लायक़ न रही हो। ग्रथवा, सरस्वती के साथ हमारा जो सम्बन्ध है वह उनको दुःसह हो; इससे वे न लिखते हों। कुछ भी हो; हम उनको पूर्ववत् ही ग्रादर की दृष्टि से देखते हैं। यद्यपि, इस समय, ग्रङ्गरेज़ी, संस्कृत ग्रैार हिन्दी इत्यादि भाषाग्रों के ग्रनेक ग्रच्छे ग्रच्छे विद्वान् सरस्वती में लिखने लगे हैं; ग्रैार ग्रगले वर्ष से ग्रैार भी कई सु-पण्डित सज्जनों ने लिखने का वादा किया है; तथापि, यदि, सरस्वती के पुराने लेखक ग्रब भी कोई लेख भेजना चाहें तो वे सङ्कोचरहित होकर भेज सकते हैं। हम उनके लेखों का यथोचित ग्रादर करने को प्रस्तुत हैं।

कुछ सज्जनों के हम इस कारण कोपभाजन हो रहे हैं कि हमने उनके लेख लैाटा दिये। उनके कोपानल की ज्वाला, कभी कभी, किसी दूसरे बहाने, समाचार-पत्रों के कालमों तक में दहकने लगती है। उनसे हमारी प्रार्थना है कि जो लेख हम लैाटाते हैं ख़ूब सोच समझ कर लैाटाते हैं। कल्पना कीजिए, कि हमारे पास जितने लेख ग्रावें, उन सबको स्वीकार करके, ग्रगर हम योग्यता के ग्रनुसार उनको यथाक्रम छापने लगें, तो कम योग्यतावालों को शायद कभी प्रकाशित होने का ग्रवसर ही न ग्रावै। इससे क्या यह ग्रधिक ग्रच्छा नहीं है कि ऐसे लेख लिखनेवालों को लैाटा दिये जायँ? हम, ग्रपनी समझ के ग्रनुसार, योग्यता का ग्रच्छी तरह विचार किये बिना कोई लेख नहीं लैाटाते। ग्रैार हिन्दी के जो हितेच्छु हैं वे कदापि यह न चाहेंगे कि सिर्फ़ किसीको प्रसन्न करने के इरादे से, योग्यायोग्य का विचार न करके, कोई लेख छापा जाय। एक ग्रैार भी कारण है जिससे

लेख लैाटाने से लेखकों को बुरा न मानना चाहिए। वह यह कि जिन लेखों को हम सरस्वती के लायक़ नहीं समझते उनको ग्रैार लोग प्रसन्नतापूर्वक ग्रैार धन्यवादसहित छापते हैं। यहां तक कि बड़ी बड़ी सभायें करके उनके लेखकों को पदक तक दे डालते हैं। ग्रतएव यह बात केवल सम्मति पर ग्रवलम्बित ठहरी। बहुत सम्भव है कि जो वस्तु हमको ग्रच्छी न लगे वह ग्रैारों को ग्रच्छी लगे; ग्रैार जो ग्रैारों को ग्रच्छी न लगे वह हमको ग्रच्छी लगे। हमने ग्रनेक बार देखा है कि हमारे लैाटाये हुए लेख ग्रैार लोगों ने बहुत जल्द छाप निकाले।

एक बात का हमको ग्रफ़सोस है। जो पुस्तकें हमारे पास समालोचना के लिए ग्राती हैं उनकी समालोचना हम लिख तो तत्कालही लेते हैं; परन्तु दूसरे विशेष उपयोगी लेखों के ग्रा जाने से, उनके छपने में विलम्ब होता है। यदि सरस्वती की पूर्ववत् उत्तरोत्तर उन्नति होती गई तो इसके पृष्ठों की संख्या बढ़ा देने का विचार है। इस वर्ष भी पहले से कुछ ग्रधिक पृष्ठ छापे गये हैं। ऐसा होने से स्थान की सङ्कीर्णता कम हो जायगी ग्रैार सब समालोचनायें झट झट छपती चली जायंगी।

हमारे पास, कभी कभी, ऐसी पुस्तकें समालोचना के लिए ग्रा जाती हैं जो ग्रँगरेज़ी, मराठी, बँगला या गुजराती भाषा की किताबों का ग्रविकल ग्रनुवाद हैं। इनमें मूल पुस्तक की भूमिका तक का ग्रनुवाद रहता है; परन्तु मूल ग्रन्थकार का कहीं भी नाम नहीं दिया जाता। यह बहुत बड़े कलङ्क की बात है। किसीके भाव को ग्रपने शब्दों में कह देना इतना ग्राक्षेपयोग्य नहीं; परन्तु, दूसरे की किताब को साद्यन्त नक़ल कर लेना, ग्रैार उसे ग्रपनी बनाई हुई बतलाना, बहुत ही बड़े साहस का काम है। ऐसे काम बनारस, मुरादाबाद ग्रैार झांसी के पास एक शहर में ग्रधिकता से होते हैं। ऐसा न होना चाहिए। इन साहसी सज्जनों को याद रहे कि, पूर्वोक्त भाषाग्रों के जानने का सैाभाग्य उन्हींको नहीं प्राप्त है। ग्रैार भी ऐसे लोगों का होना साहित्य संसार में सम्भव हो सकता है। ग्रतएव उनकी चोरी किसी न किसी दिन खुले बिना नहीं रह सकती। ग्राज तक हमारे पास ऐसी जितनी पुस्तकें ग्राईं उनमें से कई एक की हमने समालोचना ही नहीं की; क्योंकि उनके विषय में कुछ भी कहना हमने मुनासिब नहीं समझा। ग्रैार एक ग्राध की की भी, तो इस तरह से की, कि लिखनेवाले की ग्रपकीर्ति भी न हुई ग्रैार बात भी हमने सच कह दी। परन्तु हम देखते हैं कि लोग इस गर्हित व्यापार में ऐसे लिप्त हो गये हैं, ग्रैार पैसा ग्रैार नाम कमाने का यह एक ऐसा सहज उपाय उनको मिल गया है; कि वे उससे बाज़ नहीं ग्राते। ग्रतएव ऐसे सज्जनों से हमारी यह प्रार्थना है कि ऐसी किताबें वे हमारे पास समालोचना के लिए न भेजें। इस पर भी यदि वे भेजने का साहस करेंगे तो ऐसे दूषित साहस की प्रथा की मात्रा को कम करने के ग्रभिप्राय से, विवश होकर, हमको उनका भेद खोल देना पड़ैगा।

कुछ साहित्य-सेवी सज्जनों ने, इस वर्ष भी, सरस्वती पर, दो एक बार, ग्राक्रमण किया। उनके ग्राक्रमण में प्रयोग की गई बाणावली की शक्ति का जो हमने विचार किया तो प्रायः सब में एक विलक्षण नीति के ग्रवलम्बन किये जाने का पता हमको मिला। हमको यह देख पड़ा कि जिस बात को वे दोष मानते हैं, ग्रैार जिसे वे, सरस्वती को कुटकी का क्वाथ पिलाकर, दूर करना चाहते हैं, उसीसे वे स्वयं ग्रापादमस्तक ग्रभिभूत हो रहे हैं। ये सभ्य जन, शायद—

परहितनिरतानामादरो न स्वकार्ये

वाली नीति का ग्रनुसरण करनेवाले हैं। ग्रस्तु। हम उनको ग्रैार दूसरों को भी, सभी को, सच्चे हृदय से धन्यवाद देते हैं; ग्रैार नम्रता पूर्वक कहते हैं, कि उनकी नीति चाहे जैसी हो, हम सबकी सूचनाग्रों का ग्रादर करके, उनमें से ग्राह्य बातों को ग्रहण करने के लिए, सदैव प्रस्तुत रहे हैं; ग्रब भी हैं; ग्रैार ग्रागे भी बने रहेंगे।

किसी किसी ने सरस्वती में प्रकाशित हुए दो एक लेखों पर अनधिकार चर्चा भी की। उनकी यह लीला, अपने हितही के लिए हुई जान कर, हमने उनके वाग्जाल को सम्मानसहित पढ़ा। पर हम नहीं कह सकते कि और्रों ने उसे किस भक्तिभाव से देखा होगा। संस्कृत के कुछ विद्वान् ऐसे हैं जिन्हों ने अपनी सारी उम्र पुरानी बातों के जानने और वैदिक-साहित्य के विचार करने में ख़र्च कर डाली है। उनके सिद्धान्तों को ग़लत सिद्ध करने के लिए, कभी कभी, ऐसे भी पुरुष, जो वैदिक साहित्य में पारदर्शी होना तो दूर रहा, "रामः, रामौ, रामाः" का भी ज्ञान नहीं रखते, असार और प्रमाणहीन बड़ी बड़ी बातें कहने का साहस करते हैं। उनको जानना चाहिए, कि जिस बात को जो नहीं जानता, उसमें प्रगल्भता दिखलाने की चेष्टा करने से, उलटा उसीको हँसी होती है।

सभा और सरस्वती।

आक्टोबर की सरस्वती में नागरीप्रचारिणी सभा के "खोज की रिपोर्ट" की आलोचना छपी। उसे पढ़कर सभा का आसन डोल उठा। समालोचना निकलते ही पायनियर में एक लेख प्रकाशित हुआ। वही लेख इलाहाबाद के इण्डियन पीपुल, और लखनऊ के ऐडवोकेट और इण्डियन स्टूडेण्ट नामक एक सद्यप्रसूत मासिक पुस्तक में भी छपा। इस लेख में सभा के खोज-सम्बन्धी काम की बेहद तारीफ़ की गई। लिखा गया कि सभा ने कोई ५०० पुस्तकें ढूंढ निकाली हैं जिनमें से कुछ पुस्तकें प्रायः अप्राप्य थीं। महाराजा बनारस के यहां की रामायण की बात फिर से दोहराई गई और लिखा गया कि सभा ने बहुत रुपया ख़र्च करके* बड़ी ख़ूबसूरती से उसे छपाया। इसके आगे ग्रिफ़िथ, हारनली, बार्थ, आर० सी० दत्त और पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्य के भेजे हुए प्रशंसापूर्ण पत्रों की नक़ल दी गई। नहीं मालूम यह लेख किसका लिखा है। सभा के कार्य्य-कर्त्ताओं में से किसीका लिखा हुआ यह लेख कदापि नहीं हो सकता। वे अपने मुँह से अपने काम की तारीफ़ कभी न करेंगे; वे यह ज़रूर जानते होंगे कि अपने मुँह अपनी तारीफ़ करना मानों अपने गौरव को घटाना है। किसी ने ठीक कहा है—

इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः

इसीसे हम फिर भी यह कहते हैं कि पायनियर में जो लेख निकला है वह सभा के किसी कार्य्यकर्त्ता या स्वयं मन्त्री सुपरिण्टेण्डण्ट महाशय का लिखा हुआ नहीं है। वह किसी और ही का लिखा हुआ है। परन्तु वह ऐसे पुरुष का लिखा हुआ है जो नागरी प्रचारिणी सभा के दफ़्तर की कुञ्जी अपने पास रखता है। अथवा जिसे सभा या खोज के सुपरिण्टेण्डण्ट के काग़ज़ पत्र देखने को मिलते हैं; या माँगने पर उसे मिल सकते हैं। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो खोज के काम की तारीफ़ से भरे हुए पत्र, जो सभा के दफ़्तर, या सुपरिण्टेण्डण्ट के घर पर होने चाहिएं, उसे क्योंकर मिलते और वह क्योंकर उन्हें अख़बारों में छपा सकता? यदि हमारी यह सम्भावना ग़लत हो तो सभा यह दया करके बतलावे कि वे पत्र पायनियर तक कैसे पहुँचे? पायनियर में छपे हुए लेख से एक बात यह साबित होती है कि सभा जैसे हिन्दी के पत्र और पुस्तकों के कर्ताओं को खोज की रिपोर्ट देने की ज़रूरत नहीं समझती, वैसे ही खोज के काम की तारीफ़ भी वह उन्हें नहीं सुनाना चाहती। तभी तो पायनियर के लेखक को अँगरेज़ी अख़बारों की शरण लेनी पड़ी है। परन्तु हमारी प्रार्थना है कि ग्रिफ़िथ, हारनली और दत्त की चलाई सभा नहीं चलती। सभा सभासदों के समूह का नाम है। उन्हीं की सभा है और उन्हीं के चन्दे से वह चलती है। जो मकान सभा ने बनवाया है

---

* रामचरितमानस के लिए सभा को एक कौड़ी भी नहीं ख़र्च करनी पड़ी। उसके खोज कराने, शोधन करवाने और छापने का कुल ख़र्च इण्डियन प्रेस ने उठाया है। मैनेजर सरस्वती।

उसके लिए भी हिन्दुस्तानियों ही ने चन्दा दिया है—न पायनियर ही ने दिया; न बार्थ साहब ही ने एक कौड़ी फ्रांस से भेजी। इस लिए उचित तो यह है कि हिन्दुस्तानी अख़बारों, हिन्दुस्तानी सभासदों और हिन्दुस्तानी धनवानोंही को वह प्रसन्न रखने की चेष्टा करे और उन्हींसे वह प्रशंसापत्र भी इकट्ठा करे।

२। सम्भव है, पायोनियर के लेखक ने हमारी समालोचना से सभा का कुछ अनिष्ट समझा। इसलिए उसने खोज के काम की इतनी तारीफ़ की। लेखक ने समझा होगा कि उस तारीफ़ के पढ़ने पर हमारी समालोचना का कुछ भी असर गवर्नमेण्ट पर न पड़ैगा। परन्तु उसका डर व्यर्थ है। उसे याद रखना चाहिए कि डरता वही है जिसका काम ठीक नहीं होता। यदि खोज का काम यथोचित रीति पर हो रहा है तो ऐसी हज़ार समालोचनाओं से भी सभा को हानि नहीं पहुँच सकती। और हमारी यह कदापि इच्छा भी नहीं कि सभा को हानि पहुँचै। यदि हमारी यह इच्छा होती तो हमैं अपनी समालोचना का अङ्गरेज़ी अनुवाद गवर्नमेण्ट तक पहुँचाने और पानियरवाले लेख के अभिप्राय को व्यर्थ कर देने में बहुत अधिक प्रयास न पड़ता। परन्तु हमको यह अभीष्ट नहीं। फिर, सरस्वती की समालोचना को गवर्नमेण्ट पढ़ने ही क्यों लगी। और यदि पढ़ै भी तो पायनियरवाले लेख से क्या उसका खण्डन हो सकता है? उस लेख में सभा के खोज-सम्बन्धी साधारण काम की प्रशंसा है और जो प्रशंसापत्र हैं वे १९०० ईसवी की रिपोर्ट से सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु हमारी समालोचना १९०१ ईसवी की रिपोर्ट की है। अतएव गवर्नमेण्ट ऐसी बेवक़ूफ़ भी नहीं जो वह समझ ले कि पायनियरवाले लेख से सरस्वती की समालोचना का खण्डन हो गया।

३। रिपोर्ट की समालोचना निकलने पर एक बात तो यह हुई कि पूर्वोक्त प्रशंसापत्र अङ्गरेज़ी अख़बारों में प्रकाशित हुए। दूसरी बात यह हुई कि, उसके साथ ही, बनारस-वासी बाबू अमीर-सिंह और मिर्ज़ापुर-निवासी पण्डित केदारनाथ पाठक—ऐसे एक बाबू और एक पण्डित मिलकर दो सज्जन—सभा की तरफ़ से बुँदेलखण्ड में पुस्तकें खोजने के लिए नियुक्त हुए। और पाठकजी रवाना भी कर दिये गये। इस बात से शायद किसी किसी की यह धारणा होगी कि हमारी समालोचना से सभा ने कुछ लाभ भी उठाया। कुछ समय हुआ, हमने सभा की भौगोलिक परिभाषा की समालोचना करके यह दिखलाया था कि उसमें बहुत सी ग़लतियां हैं; इसा तक दुरुस्त नहीं; और प्रूफ़ तक अच्छी तरह नहीं जाँचे गये। इस विषय में, सभा के ७ सितम्बर १९०४ के अधिवेशन में, बाबू ठाकुरप्रसाद पर अप्रसन्नता प्रकट की गई और अपना काम ठीक तौर पर न करने के कारण उनसे कैफ़ियत माँगी गई। इससे यह सूचित होता है कि हमारी उस समालोचना से भी सभा ने लाभ उठाया। परन्तु सभा ने हमको न उसी दफ़ा कुछ लिखा और न इसी दफ़ा। इसे और कोई चाहै अकृतज्ञता समझै; परन्तु हम तो यही कहेंगे कि, बहुत करके, सभा ने ये काम हमारी समालोचनाओं से प्रेरित होकर नहीं किये; अपने आपही किये। अतएव उसे हमसे कुछ कहने की क्या ज़रूरत?

४। दो बातों का ज़िक्र ऊपर हो गया। रिपोर्ट की समालोचना निकलने पर तीसरी बात जो हुई वह बहुत बड़ी हुई। वह एक पत्र है जिसे सभा के मन्त्री ने इण्डियन प्रेस के मालिक को लिखा है और उसे सरस्वती में प्रकाशित कराना चाहा है। हमारी कदापि यह इच्छा न थी कि इस खोज के विषय में हम और कुछ लिखें। परन्तु सभा के इस पत्र ने हमैं यह लेख लिखने को विवश किया। सभा इस पत्र को प्रकाशित हुआ देखने के लिए इतनी अधीर हो रही है कि नवम्बर की सरस्वती में उसे न देखकर उसकी याद दिलाने के लिए सभा को एक और पत्र लिखना पड़ा। इस पत्र की हूबहू नक़ल नीचे दी जाती है। इसमें पाराग्राफ्स के जो नम्बर हैं वे हमने अपनी तरफ़ से लगा दिये हैं। और सब यथातथ्य है-

नं० ७३८/१२

नागरीप्रचारिणी सभा

बनारस सिटी ५ नवम्बर १९०४

बाबू चिन्तामणि घोश [ष]
इण्डियन प्रेस
इलाहाबाद.

महाशय,

सरस्वती में प्रकाशित 'किताबों के खोज की रिपोर्ट' शीर्षक व्यङ्गपूर्ण लेख देखकर सभा को बड़ा खेद हुआ है।

२—सरस्वती और सभा का सम्बन्ध ऐसा है कि उसमें सभा के विषय में अटकल पच्चू कुछ लिखना सर्वथा अनुचित था। जिस सन्दिग्ध विषय का निर्णय एक पत्र से हो सकता था उसे प्रकाशित करके सभा पर व्यर्थ आक्षेप किया गया है। सम्पादक महाशय ने इतना तो कष्ट उठाया कि ३) रु० व्यय करके पुस्तक मँगाई परन्तु एक पत्र लिखकर पूछने की कृपा नहीं की कि उनका सन्देह दूर हो जाता।

३—गवर्नमेण्ट सभा को जो रुपया देती है वह केवल पुस्तकों की खोज के लिये है। उसकी रिपोर्ट वह अपनी ओर से छापती है। उसका मूल्य रखना और उसे समालोचना के लिये बाँटना यह गवर्नमेण्ट के स्वाधीन है। सभा को इसमें कोई अधिकार नहीं है। सभा को जो तीस प्रतियें मिलती हैं उनकी कुछ कापी तो सभा रख लेती है, कुछ उन लोगों को दी जाती है जो इस खोज में सहायता देते हैं और कुछ खोज के सुपरेण्टेण्डेण्ट को मिलती हैं जिन्हें बाँटना उनकी इच्छा पर है।

४—हिन्दी के लिये गवर्नमेण्ट की सहायता अब सभा के उद्योग से मिलने लगी है परन्तु संस्कृत के लिये सन् १८६८ से प्रत्येक प्रान्त की गवर्नमेण्ट उद्योग करती है और बङ्गाल को एशियाटिक सुसायटी को भी इसी काम के लिये बहुत बड़ी सहायता प्रति वर्ष मिलती है और इस काम के सुपरेण्टेण्डेण्टों को एजेण्ट भेजकर पुस्तकों की खोज तथा दूसरे व्ययों के सिवाय उनके परिश्रम का पुरस्कार भी मिलता है। परन्तु सभा को सुपरेण्टेण्डेण्ट को कुछ नहीं देना पड़ता, वे कृपा करके यह काम अवैतनिक करते हैं। इस काम को करने के योग्य एजेण्ट भेजने में या बाहर के प्रतिष्ठित सज्जनों के द्वारा जो व्यय पड़ता है वह तथा क्लार्क आदि का जो व्यय पड़ता है पैसा पैसा सभा के हिसाब में लिखा जाता है और आडिटर द्वारा जाँचा जाता है। इधर का हिसाब गवर्नमेण्ट ने सभा से माँगा था और उसे देखकर उसने ग्रन्थमाला के लिये ३००) रु० वार्षिक सहायता और बढ़ा दी है। कभी कभी सुपरेण्टेण्डेण्ट को भी विशेष पुस्तकों को देखने के लिये बाहर जाना पड़ता है। मलिहाबाद की रामायण के लिये सुपरेण्टेण्डेण्ट को तीन बेर लखनऊ जाना पड़ा था, परन्तु बहुत से बड़े अफ़सरों की सहायता मिलने पर भी इस पुस्तक की नोटिस न हो सकी। ऐसे ऐसे कितने ही उद्योग व्यर्थ जाते हैं।

५—पुस्तकों की आलोचना का मूल्य सम्पादक महाशय ने बड़ी उदारता से निर्धारित किया है। कवि बिहारीलाल के दोहों के पुरस्कार देने के समय यदि वे होते तो अक्षरों पीछे क्या परता बैठता है इसका अच्छा हिसाब महाराज जयसिंह को सुझा देते।

६—विशेष खेद की बात यह है कि सम्पादक महाशय ने रिपोर्ट के पन्ने गिनने और पुस्तकों की संख्या तथा मूल्य निश्चय करने में इतना परिश्रम उठाया परन्तु दो चार शब्दों में भी उन्हें इसकी आलोचना करने का अवकाश नहीं मिला कि इस रिपोर्ट से हिन्दी के साहित्य और इतिहास को क्या लाभ हुआ है।

७—अस्तु ऊपर लिखी बातों के जानने पर आशा है कि सम्पादक महाशय का सन्देह दूर हो जायगा और वे इस पत्र को सरस्वती की आगामी संख्या में छाप कर जो शंकाएं लोगों के हृदय में उठनी सम्भव हैं उन्हें दूर कर देंगे।

८—आगे के लिये आशा है कि आप सभा के विषय में शङ्कापूर्ण लेख सभा से निर्णय करके तब छापेंगे। निस्सन्देह सम्पादक का किसी विषय में मतभेद हो तो अवश्य वे उसकी आलोचना कर सकते हैं। भवदीय

श्यामसुन्दरदास
मंत्री।

——

५। अब इसके एक एक पाराग्राफ़ का हमको उत्तर देना है। क्योंकि सभा ने जब अपना पत्र छपाना चाहा है तब वह हमारा उत्तर सुनने के लिए भी प्रस्तुत होगी। सरस्वती के वाचकों से हमारी प्रार्थना है कि पहले वे आक्टोबर की सरस्वती में रिपोर्ट की समालोचना पढ़ लें। तब सभा के इस पत्र को दुबारा पढ़ जायँ। फिर वे हमारा उत्तर पढ़ने की कृपा करें। इससे उनको मालूम हो जायगा कि समालोचना में कही गई किस किस बात का खण्डन सभा ने किया है। हमारी मन्दबुद्धि में तो यह आता है कि हमारी समालोचना अभी तक वैसी ही अखण्डित बनी हुई है; इस पत्र में उसके खण्डन का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया। हां, और बहुत सी अप्रासङ्गिक बातों से पत्र भर ज़रूर दिया गया है। सभा ने यदि और किसी बात का खण्डन नहीं किया तो न सही। वह इतना ही लिख देती कि १९०१ ईसवी में किस किस ने, कहां कहां और कितने कितने दिनों तक खोज की और जोधपुर, रीवाँ, और बनारस की पुस्तकों के विषय में जो कुछ हमने लिखा वह ठीक है या नहीं। ख़ैर; इसे जाने दीजिए। अब सभा की चिट्ठी का उत्तर सुनिये—

६। पारा १—साहित्य के आचार्य्यों ने व्यङ्ग्य-प्रधान पद्य को सर्वोत्तम माना है। वही नियम गद्य के लिए भी हो सकता है। नागरीप्रचारिणी सभा एक बहुत प्रतिष्ठित समाज है। इसीलिए हम भी उसके सभासद हैं। अच्छे लेख की परीक्षा उससे बढ़कर और कोई नहीं कर सकता। अच्छे लेखकों को वह मेडल भी दिया करती है। जब वह हमारे लेख को व्यङ्ग्यपूर्ण बतलाती है तब वह अवश्य व्यङ्ग्यपूर्ण होगा। अतएव वह सर्वोत्तम गद्य में गिनने लायक़ हुआ। यह हमारे लिए बहुत अच्छी सरटीफ़िकेट हुई। एतदर्थ हम सभा को धन्यवाद देते हैं। अब सभा से हमारा यह विनय है कि वह हमारे व्यङ्ग्यों का विश्लेषण करके जिन व्यङ्ग्यीभूत अर्थों से उसे खेद हुआ है उन्हें बतलावे। यदि वे अर्थ निःसार हों तो उनका खण्डन करे। तब हम बड़ा नहीं—किन्तु बहुतही बड़ा खेद—और साथही उसके पश्चात्ताप भी प्रकाशित करेंगे। और यदि वे अर्थ सारवान् हों तो वह अपने खेद के कारणों को दूर करने का यत्न करे।

७। (क) पारा २—सरस्वती और सभा का यह सम्बन्ध है कि सभा ने कृपापूर्वक पूर्ववत् अपना नाम सरस्वती के आवरण-पृष्ठ पर रहने दिया है। इसका हमको बड़ा गर्व है; और, इसलिए, हम लोग सभा के बहुत कृतज्ञ भी हैं।

(ख) सभा से हमारी प्रार्थना है कि दया करके वह बतलावे कि हमने अटकलपच्चू क्या लिख डाला। जब तक सभा यह न बतलावेगी तब तक हम यही समझेंगे कि जो कुछ हमने लिखा है वह सर्वथा उचित है; और जो कुछ सभा ने इस विषय में, अपनी चिट्ठी में लिखा है, वह सर्वथा अनुचित है।

(ग) पहले तो हमारा यह विनय है कि सभा के खोज के काम में हमको कोई सन्देह नहीं; हम बिलकुल निःसन्देह हैं। क्योंकि सन्देह तभी हो सकता है जब कोई चीज़ ठीक ठीक समझ में न आवे। रही, पत्र लिख कर पूछने की बात, सो, हमारी प्रार्थना है कि सभा को जब पत्र लिखने की ज़रूरत पड़ी तब उसने न सम्पादक को कुछ समझा, न मैनेजर को कुछ समझा—यहां तक कि प्रोप्राइटर को भी, उनके निज नाम से, सभा के मन्त्री ने पत्र लिखा। तब वह किस तरह आशा रखती है कि ख़ास प्रोप्राइटर को छोड़कर हम में से कोई उससे पत्र-व्यवहार करे? समालोचना हमने लिखी थी; प्रोप्राइटर ने नहीं। अतएव सभा को जो कुछ

कहना था वह हमसे कहती। यह उसे ज़रूर याद होगा कि सभा में हमारा भी कुछ अंश है; क्योंकि हम भी उसके सभासद हैं। फिर हमें लिखने में उसे सङ्कोच क्यों? ख़ैर, हमने मान लिया कि हमसे ग़लती हुई जो हमने उसे पत्र लिखकर पूछपाछ न की। सभा तो समझदार, उदार और दयालु है। वही हमारी ग़लती हमको बतलाती और हमें, जो कुछ लिखना था, लिखती।

सभा से हमको कुछ पूछना है। वह बतलावे कि बिना ३) रुपये ख़र्च किये और खोज की रिपोर्ट मँगा कर पढ़े हमको सन्देह हो कैसे सकता था? क्या हम परोक्षदर्शी हैं? अथवा क्या हमको अन्तःसाक्षित्व विद्या आती है? न सभा पुस्तकें देगी; न मोल लेने देगी। परन्तु सन्देहपूर्ण और सन्दिग्ध विषयों का निर्णय पत्र द्वारा कर लेने का उपदेश ज़रूर देगी! शायद सभा का मतलब है कि रिपोर्ट मोल लेकर हम पढ़ते और फिर जो कोई सन्देह हमको होते उनके निवारण के लिए हम सभा को पत्र लिखते। इसका भी हमारा वही उत्तर है कि हम बिलकुल निःसन्देह हैं। जितनी पुस्तकों के नाम १९०१ ईसवी की रिपोर्ट में हैं वे ज़रूर खोजी गई हैं; वे ज़रूर विद्यमान हैं; गवर्नमेण्ट ने ज़रूर ५००) रुपये दिये हैं; और वे रुपये खोज के काम से सम्बन्ध रखने-वालों ने ज़रूर पाये हैं। फिर सन्देह कैसा? किसने खोजा, कब खोजा, कहां खोजा, कितने दिन तक खोजा और किसने कितना पाया इत्यादि बातें गौण हैं। इन बातों को जानने की जिसे इच्छा हो वह चाहे सभा को पत्र लिखे; चाहे बनारस जाकर पूछ आवे; और चाहे जो कुछ करे। हां, यदि इन बातों को सभा बतलाना चाहती हो तो बतलावे। हम भी सुन लेंगे।

८। (क) पारा ३—इस पारा के पूर्वार्द्ध में सभा ने जो कुछ लिखा है उसके लिए सभा का धन्यवाद है। यह हम अब तक न जानते थे कि खोज ही के लिए गवर्नमेण्ट रुपया देती है; वही रिपोर्ट छापती है; वही मूल्य नियत करती है; और वही समा-लोचना के लिए किताबें बाँटती है। परन्तु सरस्वती के प्रोप्राइटर का अनुभव हमसे बहुत अधिक है। इसलिए हम सभा के जानने के लिए लिखे देते हैं कि वे इन बातों को पहले ही से अच्छी तरह जानते थे। इसलिए उनको भेजे गये पत्र में ये बातें आव-श्यक न थीं। हां, हम नहीं जानते थे। इससे इन बातों को बतलाने के लिए हम सभा के कृतज्ञ हैं; और बहुत कृतज्ञ हैं।

(ख) रिपोर्ट की ३० प्रतियां सभा को मिलती हैं। यह ख़ुशी की बात है। यदि बनारस के बाहर रहनेवाले सभासदों को भी प्रस्ताव करने का हक़ है तो हम इस लेख द्वारा यह प्रस्ताव करते हैं कि सभा सर्वसाधारण के जानने के लिए यह बतलावे कि १९०१ की रिपोर्ट की इन ३० कापियों में से कितनी सभा ने रक्खीं; कितनी खोज के अधिष्ठाता को मिलीं; और कितनी खोज के सहायकों को। खोज के सहायकों के नाम भी सभा बतलावे और अपनी कापियों का भी वह हिसाब दे। अपने पुस्त-कालय में एक या दो कापियों से यदि अधिक कापियां सभा रखना चाहती है तो वह इसका कारण बतलावे। और यदि उचित समझे तो खोज के अधिष्ठाता को दी हुई किताबों के बांटे जाने का भी वह हिसाब दे। वह यह भी कृपा करके बत-लावे कि खोज के सुपरिण्टेण्डेण्ट यदि खोज की रिपोर्ट किसी अयोग्य पुरुष को दे डालें तो यह बात सभा पसन्द करैगी या नहीं। और यदि न पसन्द करैगी तो उनसे पूछै कि १९०१ की रिपोर्ट उन्होंने किसको किसको नज़र की और वे लोग उस के पाने की कहां तक योग्यता रखते हैं।

(ग) सभा से यह प्रश्न है कि जो लोग सभा को चन्दा देते हैं वे इस बात के जानने के मुस्तहक़ हैं या नहीं कि सभा ने कितना काम खोज का किया। यदि हैं तो उन्हें इस बात के बतलाने का सभा ने क्या प्रबन्ध किया है? क्यों नहीं वह प्रत्येक रिपोर्ट का सारांश हिन्दी में संक्षेपतया प्रकाशित करती? अथवा क्यों नहीं वह प्रत्येक रिपोर्ट का मर्म हिन्दी

अख़बारों में प्रकाशित करती ? यदि वह यह समझती है कि अख़बारवाले प्रायः उसके प्रतिकूल हैं तो क्यों नहीं वह ऐसे लेख को उन अख़बारों में प्रकाशित करती जो उसके अनुकूल हैं ? क्योंकि कुछ अख़बार ऐसे भी तो हैं जो उसकी तारीफ़ही तारीफ़ करते हैं। अथवा यदि उससे और कुछ नहीं बन पड़ता तो क्यों नहीं वह अपनी पत्रिका में खोज की रिपोर्ट का सारांश छाप कर सभासदों को अपने इस काम की अभिज्ञता करा देती ? खोज करना, रिपोर्ट लिखना, गवर्नमेण्ट को भेजना और खोज से सम्बन्ध रखनेवालों को ५००) रुपया बांट देना ही क्या वह बस समझती है ?

(घ) सभा से कुछ और पूछना है। वह यह कि समस्त हिन्दी अख़बारों और मासिक पुस्तकों का अनादर करके किसने और क्या समझ कर बँगला मासिक पत्र "प्रवासी" को खोज की रिपोर्ट भेजी। क्या "प्रवासी" सभा का सभासद है ? क्या उसने भवन बनाने के लिए चन्दा दिया है ? क्या उसने सभा के लिए कोई लेख लिखे हैं ? क्या उसने सभा के लिए कोई किताब लिखकर सभा की आमदनी बढ़ाई है ? क्या उसने कोई वैज्ञानिक परिभाषा लिख कर सभा को सहायता पहुँचाई है ? अथवा क्या उसने १९०१ ईसवी की रिपोर्ट की आलोचना, इस वर्ष की सरस्वती की तीसरी संख्या में छपी हुई १९०० की रिपोर्ट की आलोचना से, अच्छी की है ? यदि नहीं तो उस पर इस कृपा का कारण क्या ?

९। (क) पारा ४—यह बात हम लोग न जानते थे कि सभा ही के उद्योग से खोज के लिए गवर्नमेण्ट सहायता देने लगी है। एशियाटिक सोसायटी और प्रत्येक प्रान्त की गवर्नमेण्ट संस्कृत के लिए जो कुछ करती है उसका जानना भी हमारे लिए बिलकुल नई बात है इसके लिए, और एजण्टों तथा सुपरिण्टेण्डण्टों इत्यादि के विषय में सभा ने जो बातें बतलाईं, उनके भी लिए हम लोग सभा के कृतज्ञ हैं।

(ख) बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए० खोज के सुपरिण्टेण्डण्ट हैं। यह जान कर हमको बड़ा ही आनन्द हुआ कि वे इतना बड़ा खोज का काम बिना एक कौड़ी वेतन लिए ही करते हैं। हमने कई दफ़ा इन बाबू साहब की तारीफ़ की है। इनकी मातृभाषा-प्रीति, उदारता, कार्यकुशलता और निस्पृहता की अब हम फिर तारीफ़ करते हैं। इन गुणों में, सचमुच, ये, इस तरफ़, अनन्वयालङ्कार का उदाहरण हो रहे हैं।

(ग) क्या सभा को यह भी शङ्का हुई कि बाहर के लोग यह समझ रहे हैं कि सभा को इस मद में जो रुपँया मिलता है उसका वह हिसाब नहीं रखती ? इस प्रकार की शङ्का का उसके मन में उत्पन्न न होना ही अच्छा था। हमको तो ऐसी शङ्का नहीं हुई। सभा पैसा पैसा का ज़रूर हिसाब रखती होगी और जाँच भी उसकी ज़रूर होती होगी।

(घ) ३००) रुपये गवर्नमेण्ट ने जो ग्रन्थमाला के लिए देना स्वीकार किया तदर्थ हम लोग, हिन्दी बोलनेवाले, गवर्नमेण्ट के कृतज्ञ हैं और सभा को इस सफलता पर बहुत ही प्रसन्न हैं। यहां पर हम पहले ही से कहे देते हैं कि इन रुपयों के उठाने और हिसाब रखने के विषय में भी हमको कोई सन्देह नहीं; और न आगे होने की सम्भावना है।

(ङ) सुपरिण्टेण्डण्ट साहब के परिश्रम, अध्यवसाय और योग्यता आदि गुणों की हम पुनर्वार प्रशंसा करते हैं। इस प्रशंसा-विषय में पिष्टपेषण करना भी हम दोष नहीं, गुणही समझते हैं। क्योंकि प्रशंसाही से उत्साह और उत्तेजना मिलती है।

१०। पारा ५—इस पारा से हमको जो ख़ुशी हुई वह बयान से बाहर है। इस पारा क्या—पूरे पत्र के लेखक सभा के मन्त्री बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० हैं। और वही खोज के सुपरिण्टेण्डण्ट भी हैं। इस में जो रूपक गर्भित है उसके अनुसार सुपरिण्टेण्डण्ट साहब बिहारीलाल कवि हुए। बाबू साहब के बनाये दोहे तो नहीं देखे गये; परन्तु, हां, गद्य में हम उनको बिहारी लाल से भी बढ़कर समझते हैं। ध्वनि से इस बात का स्मरण दिला कर सभा ने हम पर बड़ी कृपा की। हमारी बिनती यह है

कि हमने आलोचनाओं का जो मूल्य लिखा है वह अपने मन से नहीं लिखा और न हमने उसे निर्धारित ही किया। हमारी समझ में आलोचनायें अनमोल हैं। पर उनका मूल्य गवर्नमेण्ट का नियत किया हुआ है। महाराजा जयसिंह ने तो एक एक दोहे का दाम एक ही एक अशरफ़ी रक्खा था। हम समझते हैं कि रिपोर्ट की एक एक आलोचना का दाम कमसे कम इतनी अशरफ़ियां तो ज़रूर ही होनी चाहिए जितनी से एक एक खोज करनेवाले को एक एक समालोचना के लिए कम से कम एक एक अशरफ़ी तो बांट में आवे। आशा है बिहारीलाल और जयसिंह की नज़ीर देकर समालोचनाओं का मूल्य बढ़ाने और अशरफ़ियों में दिये जाने के लिए शीघ्र ही सभा गवर्नमेण्ट को एक डेपुटेशन या मेमोरियल भेजने की कृपा करेगी।

११ (क)। पारा ६—रिपोर्ट के पन्ने गिनने और पुस्तकों की संख्या तथा मूल्य निश्चय करने में हम को उतना परिश्रम नहीं उठाना पड़ा जितना पूर्वोद्धृत पत्र को लिखने में सभा के मन्त्री को और उन प्रशंसापत्रों को ढूंढ़ कर भेजने में पायनियर के लेखक को उठाना पड़ा है।

(ख) हमको यह बतलाना था कि रिपोर्ट में कौन कौन विषय है और प्रत्येक विषय कितना कितना है। यदि यह बात पन्ने गिन कर बतलाना अनुचित है, तो, सभा से प्रार्थना है, वह इसके बतलाने का माप कर, तौल कर, या और किसी प्रकार से कोई दूसरा ही तरीक़ा निकाले। आगे से हम उसीके अनुसार काम किया करेंगे। सरस्वती के पढ़नेवालों में कोई ऐसे होंगे जो समालोचनाओं की लम्बी तालिका की अपेक्षा रिपोर्ट के लम्बे होने को अधिक पसन्द करते होंगे। परन्तु किसी किसी की रुचि इसके प्रतिकूल होगी। यदि पन्नों का हिसाब न बतलाया जाता तो ५ पन्ने की जगह ५० पन्ने में रिपोर्ट का होना; और ९१ पन्ने की जगह ११ पन्ने में समालोचनाओं का होना समझने में क्या प्रत्यवाय आ सकता था?

(ग) सभा को यह शिकायत है कि हमने इस बात की आलोचना नहीं की कि इस रिपोर्ट से हिन्दी के साहित्य और इतिहास को क्या क्या लाभ पहुँचा। इस पर हमारा वक्तव्य यह है कि हम नहीं जानते थे कि सभा को हमारी या और किसी हिन्दी अख़बार या पुस्तकवाले को की हुई आलोचना की परवा है। यदि होती तो रिपोर्ट के लाभों को प्रकाशित कराने का वह कुछ प्रयत्न अवश्य करती। अपनी समालोचना के तीसरे पारा में हमने जो सभा, प्रबन्धकारिणी कमिटी के सभासद और खोज के सुपरिण्टेण्डण्ट की तारीफ़ की है वह सभा की राय में शायद कम है। बहुत अच्छा, यदि सभा आगे कभी हमारी समालोचना की परवा करेगी तो हम ज़रूर उसकी आज्ञापालन करेंगे। तब तक वह हमारी इस भूल को माफ़ करे और बघेलवंशवर्णन, यन्त्रराजविवरण, राना रासा और भागवत भाषा की जो हमने प्रशंसा की है उसीसे सन्तुष्ट रहे।

१२। पारा ७—सभा के आज्ञानुसार उसका पत्र ऊपर छप गया। रही शङ्का की बात, सो हम बिलकुल निःशङ्क हैं। परन्तु लोगों के हृदय में किन किन शङ्काओं का उठना सम्भव है यह हम नहीं जान सकते। इसका पता सभाही कृपापूर्वक लगावे और जो ज़रूरत समझे तो उन्हें दूर करने का यत्न भी करे। और, यदि लोगों की शङ्कायें सभा के इस पत्र के छपनेही से दूर हो सकें तो और भी अच्छी बात है।

१३। पारा ८—यदि सभा कोई पत्र, पुस्तक या लेख हमारे पास छापने, समालोचना करने, या और किसी लिए भेजैगी, और उसमें कोई शङ्का हमको होगी, तो हम उसकी निवृत्ति के लिए सभा को अवश्य लिखेंगे। अन्यथा हम इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझते। हां, यदि हम कोई ऐसी बात लिख दें जिसमें हमारी भूल हो तो सभा उसका खण्डन कर सकती है। उसके खण्डन का हम सहर्ष विचार करेंगे।

१४। अन्त में सभा से हमारी एक प्रार्थना है। वह यह कि यदि हम उसकी रिपोर्ट की आलोचना न छापते, तो, शायद, हिन्दी जाननेवालों में से, दो चार को छोड़कर, कोई यही न सुन पाता कि १९०१ ईसवी में सभा ने क्या खोज की। सभा की दृष्टि में यदि वह अच्छी समालोचना नहीं है तो वह कृपा करके किसी दूसरेही से उसकी समालोचना करा ले; या स्वयंही खोज की रिपोर्ट का सारांश हिन्दी में प्रकाशित कर दे। सभा के सभासदों को, जिनके चन्दे से सभा का जीवन है, कुछ तो वह खोज के काम का पता बतलाती रहे। यदि हमारे इस लेख से सभा को सन्तोष न हो तो हम अपने उत्तर को प्रत्यक्ष विशद करने के लिए प्रस्तुत हैं। अतएव सभा यदि अपने किसी योग्य प्रतिनिधि को हमारे पास भेजे तो हम प्रसन्नतापूर्वक उसका स्वागत करके उसे कैफ़ियत दें। क्योंकि इस विषय में अधिक लिखापढ़ी करने से शायद अच्छा न हो।

महामहोपाध्याय पण्डित आदित्य-राम भट्टाचार्य, एम० ए०।

इस प्रान्त के पढ़े लिखे लोगों में से ऐसा शायदही कोई होगा जो पण्डित आदित्यराम जी के नाम से परिचित न हो। जिसने किसी स्कूल या कालेज में प्रवेश किया है, और पण्डित जी के ऋजुव्याकरण को हाथ में लेकर "भवति, भवतः भवन्ति" सीखा है, उसकी तो कुछ बातही नहीं; वह तो उनका विद्यार्थी ही है। वह न जानैगा तो जानैगा कौन ?

पण्डित जी के पूर्वज बंगाल में रहते थे। आप पाश्चात्य वैदिक श्रेणी के ब्राह्मण हैं। अर्थात् आदिसूर के समय में आपके पूर्वज इसी तरफ़ से वहां गये थे। पण्डित जी का वेद यजु, शाखा कण्व और गोत्र घृतकौशिक है। इनके मातामह के पूर्वजों में काशीराम वाचस्पति नाम के एक विख्यात पण्डित हो गये हैं। स्मृतिशास्त्र के आचार्य रघुनन्दन के तिथितत्व नामक ग्रन्थ की उन्होंने एक बहुत अच्छी टीका लिखी है। काशीराम के पौत्र राजीवलोचन न्यायभूषण बनारस में आकर रहने लगे। वहां वे गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में वेदान्त के अध्यापक नियत हुए। यह घटना १८२८ ईसवी की है। वहां से वे प्रयाग चले आये। प्रयाग में उनको रीवां-नरेश, महाराजा जयसिंह देव और विश्वनाथसिंह देव, ने सब प्रकार से आश्रय दिया।

पण्डित राजीवलोचन न्यायभूषण, भट्टाचार्य महाशय के मातामह थे। उन्होंने अपनी कन्या (पं० आदित्यराम की माता) को संस्कृत पढ़ाया था। वे खूब लिख पढ़ सकती थीं। ज्योतिष में वे यहां तक ज्ञान रखती थीं कि जन्मपत्र तक बनाती थीं। उनके बड़े पुत्र का नाम पण्डित वेणीमाधव भट्टाचार्य है। आप बहुत दिनों तक प्रयाग में म्यूनीसिपल कमिश्नर रहे हैं। अब भी वे वहीं हैं। इस समय आप आनरेरी मैजिस्ट्रेट हैं।

पण्डित आदित्यराम की माता का नाम था धन्यगोपी। आदित्यराम जी उनके दूसरे पुत्र हैं। इनका जन्म २३ नवम्बर १८४७ को प्रयाग में हुआ। इनकी विदुषी माता ने इनका जन्मपत्र सूतिका-गृह ही में अपने हाथ से बनाया! पांच वर्ष के होने पर इन्होंने अपनी मां से अक्षराभ्यास किया और आठ ही वर्ष की उम्र में ये बंगला में रामायण और महाभारत पढ़ लेने लगे। यहां से ये बनारस गये। उस समय प्रयाग में ज़िला स्कूल तक न था। बनारस में ये अंगरेज़ी और संस्कृत दोनों साथ ही साथ पढ़ने लगे।

१८६४ ई० में पण्डित जी ने प्रवेशिका परीक्षा पास की। इस उपलक्ष्य में ग्रिफ़िथ साहब ने इन को वरसेस्टर का बृहत् कोश इनाम में दिया। इस कोश को पण्डित जी अभी तक बड़े आदर से रक्खे हुए हैं, क्योंकि उपहार-दाता का इस पर हस्ताक्षर है। ग्रिफ़िथ साहब आप पर बहुत ही प्रसन्न थे। यह परीक्षा पास करने पर इनको गवर्नमेण्ट की

छात्रवृत्ति भी मिली और संस्कृत की छात्रवृत्ति भी। जब तक ये कालेज में रहे, अपनी संस्कृत और अंगरेज़ी की योग्यता के बल से, ये कालेज के बड़े से बड़े वज़ीफ़े प्राप्त करते गये। एक सुवर्ण पदक भी आपको मिला। म० म० पण्डित कैलाशचन्द्र शिरोमणि, पण्डित बेचनराम त्रिपाठी, पण्डित प्रेमचन्द्र तर्कवागीश और पण्डित जयनारायण तर्कालङ्कार से आपने संस्कृत अध्ययन किया।

पण्डित आदित्यराम जी को ग्रिफ़िथ साहब से अँगरेज़ी पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ग्रिफ़िथ साहब अनेक भाषाओं के ज्ञाता हैं; अंगरेज़ी के तो वे आचार्य्यही हैं। अंगरेज़ी गद्य और पद्य लिखने में वे अपना सानी नहीं रखते। फिर, अध्यापन-विद्या में वे ऐसे कुशल हैं कि बनारस कालेज में जिस समय वे कुछ कहने या सिखलाने लगते थे, उस समय क्लास का क्लास तन्मय हो जाता था। ऐसा अच्छा अध्यापक पाकर पण्डित आदित्यराम जी ने भी उनके अध्यापन से लाभ उठाने में कोई कसर नहीं की। ग्रिफ़िथ साहब की तरह वे भी एक प्रसिद्ध अध्यापक हुए। ग्रिफ़िथ साहब का इन पर बड़ा प्रेम था। इस समय साहब यद्यपि ८० वर्ष के बूढ़े हो गये हैं; और नीलगिरि पर्वत पर, एकान्त-वास में, वेदों का अंगरेज़ी अनुवाद कर रहे हैं, तथापि वे अपने विद्यार्थियों को भूले नहीं हैं। ६ फ़रवरी १९०२ के अपने एक पत्र में वे पण्डित आदित्यराम जी को लिखते हैं—

I take very great interest in the career of my old pupils and am happy to see that many of them are occupying high and respectable positions in the service of the Government.

जिस समय ग्रिफ़िथ साहब डाइरेक्टर थे उस समय, ११ जनवरी १८८७ को, आपने एक बहुत लम्बी सरटीफ़िकट पण्डित जी को दी। उसमें पण्डित जी की छात्रावस्था के विषय में आप यों लिखते हैं—

He matriculated in 1864, passing in the first or highest class, and obtaining in consequence a Government scholarship and prize; and throughout his college career, in which he passed with great credit the local and the University Examinations, and gained additional scholarships and prizes, his regularity and attention to his studies, his rapid progress, and his good manners and conduct, gave me and all his teachers entire satisfaction. He passed the B. A. Examination, in the Second Division, in 1869, and the M. A. Examination (for which he took up Sanskrit) in 1871.

संस्कृत में एम० ए० पास कर लेने पर ग्रिफ़िथ साहब की सिफ़ारिश से, १६ मार्च १८७२ को, भट्टाचार्य्य महाशय सागर के "हाई स्कूल" में संस्कृत के अध्यापक नियत हुए। वहां दोही तीन महीने वे रहे होंगे कि प्रयाग में म्योर कालेज की स्थापना हुई। तब वे म्योर कालेज में बदल आये और वहां संस्कृत के अध्यापक हुए। इस प्रकार वे अपनी जन्म-भूमि प्रयाग में पहुंच गये। इस कालेज में वे दो वर्ष रहे। इतने में बनारस के क्वीन्स कालेज में अंगरेज़ी और संस्कृत-विभाग के अध्यापक की जगह ख़ाली हुई। उस पर गफ़ साहब थे; पर वे म्योर कालेज को बदल आये। इस जगह पर तब तक कोई देशी विद्वान् न नियत हुआ था। डाक्टर हाल, डाक्टर कर्न और ग्रिफ़िथ साहब, जितने इस जगह पर गफ़ साहब से पहले थे, सब विलायती थे और सभी अंगरेज़ी तथा संस्कृत के पारगामी पण्डित थे। परन्तु, इस समय, विद्या-विभाग के अधिकारियों को भट्टाचार्य्य महाशय से अधिक योग्य पुरुष न मिला। इस लिए वही इस सम्माननीय पद पर अधिष्ठित किये गये। जनवरी १८७४ से मार्च १८७५ तक आप इस पद पर रहे। जब डाक्टर थीबो विलायत से इस जगह के लिए विशेष रूप से मुक़र्रर होकर आ गये, तब पण्डित आदित्यराम जी म्योर कालेज में अपनी जगह पर लौट आये। १८७८ में वे वहां पर इतिहास और दर्शन-शास्त्र के अध्यापक हुए। १८८१ में आप कुछ काल तक अंगरेज़ी के भी अध्यापक रहे। फिर आप

के संस्कृत का अध्यापन—कार्य मिला। इसी पर आप अन्त तक बने रहे। १९०२ में, ५५ वर्ष के वयो-वृद्ध होकर, आपने पेंशन ले ली।

म्योर कालेज ग्रैर "फैकल्टी ग्राफ़ ग्रार्ट्स्" के लिए पण्डित आदित्यराम जी ने जो कुछ किया है उसकी प्रशंसा शिक्षा-विभाग के डाइरेकृर ग्रैर कालेज के प्रधानाध्यापक ने खूब की है। आप "सिंडिकेट" के मेम्बर हैं। इलाहाबाद के विश्व-विद्यालयकी सभाओं में आपने कभी किसीको प्रसन्न करने अथवा किसी व्यक्तिविशेष को लाभ पहुंचाने के इरादे से कोई काम नहीं किया। जो कुछ आपको उचित ग्रैर न्याय समझ पड़ा है वही आपने स्पष्ट-तया कहा भी है ग्रैर उसीके अनुसार, समय पर, आपने काम भी किया है। यूनीवरसिटी कमिशन को आपने जो अपनी राय लिखकर दी थी वह पढ़ने के लायक़ है। उसमें आपने साफ़ साफ़ इस बात की सिफ़ारिश की है कि विश्वविद्यालय की सभाओं में शरीक होनेवालों को इस बात की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए कि निर्भय हो कर वे अपने सच्चे आन्तरिक विचारों को व्यक्त कर सकें। इस लेख में पण्डित जी ने संस्कृत-प्रचार के विषय में बहुत कुछ कहा है।

पण्डित जी की विद्वत्ता से प्रसन्न हो कर गवर्नमेण्ट ने १८९७ में आपको महामहोपाध्याय की पदवी देकर अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया। आपके नामके साथ इस पदवी का मणि-काञ्चन का ऐसा योग हो गया।

३० वर्ष नौकरी करके जब आप म्योर कालेज से अलग होने लगे तब कालेज में एक सभा हुई। डाकृर थीबो ने अपनी वक्तृता में भट्टाचार्य्य महाशय के कामों की ख़ूब प्रशंसा की। कालेज के कई पुराने विद्यार्थी—माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय, पण्डित सुन्दरलाल, तथा हाईकोर्ट के ग्रैर कई वकील—इस अवसर पर आये थे। जब मालवीय जी बोलने को उठे तब उनका गला ऐसा भर आया कि उनको अश्रुपात होने लगा। कालेज के विद्यार्थियों ने, अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिए, अपने व्यय से, पण्डितजी का एक फ़ोटो (Life size Bust) बनवाकर कालेज के पुस्तकालय में लगाने का तत्काल विचार किया। यह शायद अब तक लग भी गया हो।*

शिक्षा-विभाग के डाइरेकृर ग्रिफ़िथ ग्रैर लिविस साहब ने आदित्यराम जी को बहुत अच्छे सरटी-फ़िकट दिये हैं। पण्डित जी के गुणगान से वे साद्यन्त भरे हुए हैं। ग्रिफ़िथ साहब अपनी सरटी-फ़िकट के अन्त में लिखते हैं—

His whole official career has been one of quiet, steady and successful labour, and I have a very high opinion of his character and merits as a servant of the State.

पण्डित जी हिन्दी-मिडिल के बहुत वर्षों तक परीक्षक रहे हैं। डाइरेकृर साहब की भेजी हुई हिन्दी पुस्तकों की आलोचनायें भी आप करते रहे हैं। इस सम्बन्ध में आपने जो काम किये हैं उनकी भी ग्रिफ़िथ साहब ने बड़ी बड़ाई की है।

इस प्रान्त के स्कूलों में हिन्दी की जो किताबें पढ़ाई जाती हैं उनकी जांच के लिए टेक्स्ट बुक कमिटी की जो शाखा है उसके पण्डित जी मेम्बर हैं; ग्रैर सुनते हैं, आप अपनी सच्ची राय देने से कभी नहीं सकुचे हैं। चाहे जिसकी पुस्तक हो, ग्रैर चाहे आप पर जैसा दबाव डाला जाय, आप कभी किसीका पक्षपात नहीं करते। आपकी न्याय-शीलता को धन्य है। इस विषय में लिविस साहब अपनी सारटीफ़िकट में क्या कहते हैं सो सुनिए—

His services as a member of the Provincial Text-Book Committee have been particularly generous and valuable; the number of books which he has critically examined and reported on in detail, is very great indeed, and his reviews have been the expression of his scholarship and of his sincere desire to help things forward in the direction of progress, while they have remained untainted by any unworthy

* यह लेख अक्तोबर १९०४ का लिखा हुआ है। सं० स०

महाराजा मानसिंह ।

prejudice or sinister aim. He appears to have laboured constantly with the high object of promoting the public good as he conceived it. He has been frank and outspoken and tenacious of his own opinions, but I have not known him to fail in courtesy and true loyalty. I believe that any course of conduct not perfectly straightforward would be entirely foreign to his nature and habit of thought.

शिक्षाविभाग के सबसे बड़े अफ़सर की की हुई इस यथार्थ स्तुति को पढ़कर टेक्स्ट बुक कमिटी के दूसरे मेम्बरों को उपदेश ग्रहण करना चाहिए।

पण्डित आदित्यरामजी नागरीप्रचारिणी सभा के सभासद हैं। टेक्स्टबुक कमिटी में सभा अपना एक मेम्बर भेजने का बड़ा उद्योग कर रही है। परन्तु गवर्नमेण्ट के पूछने पर वह कहती है कि उसने पण्डित जी को इस पद के लिए अपना प्रतिनिधि नहीं चुना। क्या सभा ने पण्डितजी से भी अधिक योग्य कोई सभासद इस काम के लिए ढूंढ़ निकाला है?

भट्टाचार्य महाशय को हिन्दी से बड़ा प्रेम है। कोई ३० वर्ष हुए उन्होंने हिन्दी में "सरस्वती-प्रकाश" नाम की एक सामयिक पुस्तक निकालने का विचार किया था। परन्तु न तो शिक्षाविभाग ही ने इस विषय में उनकी सहायता की और न और ही किसी ने। इससे लाचार होकर आपको अपना यह सद्विचार रहित करना पड़ा। ख़ैर, इतने दिनों बाद, अब एक "प्रकाश"-हीन "सरस्वती" निकलने लगी है। आशा है, इस प्रकार, अपने विचार के एक अंश के पूर्ण हो जाने से आप प्रसन्न हुए होंगे। जब आप विद्यार्थी थे तभी आपकी इच्छा बँगला के सोमप्रकाश की तरह का एक हिन्दी अख़बार निकालने की थी; परन्तु अंगरेज़ी नौकरी स्वीकार करने पर उस इच्छा का कार्य में परिणत होना असम्भव हो गया। सरकारी नौकरी में भी आप कभी कभी अंगरेज़ी में लेख लिखकर इण्डियन-मिरर और पायनियर में प्रकाशित करते रहे हैं। १८८२ ई० में, कुम्भ-मेला के विषय में, जो कई गुम-नाम लेख पायनियर में छपे थे, वे पण्डितजी ही की लेखनी से निकले थे।

१८९७ में पण्डितजी का ज्येष्ठ पुत्र, जिसकी उम्र २४ वर्ष की थी, नहीं रहा। यह बहुत बड़ा आघात आप पर हुआ। संसार में सुख दुःख का जोड़ा किसीका पीछा नहीं छोड़ता। उसने भट्टाचार्य महाशय को भी अपनी अनुल्लंघनीयता का परिचय दिया। परन्तु—

सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम्॥

अतएव, कहने की आवश्यकता नहीं, इस दुःख को पण्डित जी ने सह डाला।

पण्डित आदित्यराम जी ने ऋजु-व्याकरण, गद्यपद्यसंग्रह और संस्कृतशिक्षा नाम की पुस्तकें लिखी हैं। ये पुस्तकें स्कूल में पढ़नेवाले लड़कों के लिए आपने बनाई हैं। उनको पढ़कर हज़ारों लड़कों ने लाभ उठाया है और अब तक उठा रहे हैं।

पण्डित जी ने यद्यपि नौकरी छोड़ दी है, तथापि आप टेक्स्ट बुक कमिटी के मेम्बर बने हुए हैं। यह बहुत अच्छी बात है। पण्डित जी का इस कमिटी में होना अत्यावश्यक है। लिविस साहब ने अपनी सारटिफ़िकट में एक जगह लिखा है—

Although Pandit ADITYARAM BHATTACHARYA has retired from the service of Government, he has, as far as it is possible for me to form an opinion, the physical, moral and mental strength for many years' labour in serving his day and generation, and amongst other things it is hoped that he will still continue to take part in the work of the Provincial Text-Book Committee.

हम इस विषय में लिविस साहब ही के साथ "तथास्तु" कहते हैं। पण्डित जी को कमिटी में ज़रूर बना रहना चाहिए। साहब ने भट्टाचार्य महाशय की शारीरिक और मानसिक अवस्था के बहुत वर्षों तक काम करने योग्य बनी रहने का जो अनुमान किया वह सच है। यही कारण है, जो,

पण्डित जी ने स्वदेशभक्ति से उत्साहित हो कर, अपने तजरिबे और अध्ययन-कौशल से भावी सन्तति को शिक्षित बनाने के लिए, कुछ दिनों से बनारस के हिन्दूकालेज में शिक्षा देना आरम्भ किया है। ईश्वर आपको सदैव नीरोग और प्रसन्न रक्खे, जिस से चिरकाल तक आपके विद्यादान में त्रुटि न हो।

महाराजा मानसिंह।

इस बार महाराजा मानसिंह का चित्र दिया जाता है। भगवानदास के कोई पुत्र न था; पर भाई तीन थे—सूरतसिंह, माधवसिंह और जगतसिंह। मानसिंह जगतसिंह के पुत्र थे। भगवानदास की मृत्यु के अनन्तर आमेर का राज्य मानसिंह को मिला था। भगवानदास ने उनको दत्तक-विधान द्वारा अपना पुत्र माना था।

अकबर के दरबार में महाराजा मानसिंह का बड़ा मान था। उन्होंने बहुत बड़े बड़े काम किये। अकबर की वे दाहिनी भुजा थे। जो काम औरों से न हो सकते थे उनको करने के लिए ये नियुक्त होते थे। मानसिंह ने विजय पर विजय प्राप्त किया और खोटान से लेकर समुद्र पर्यन्त का देश देहली की बादशाहत में शामिल कर लिया। उन्होंने अनेक युद्ध करके सारे हिन्दुस्तान में अपना आतङ्क जमाया। उन्होंने उड़ीसा को परास्त करके आधीन किया; आसाम का मानभङ्ग करके उसे करद बनाया; और काबुल को सिर उठाने का मौक़ा न दिया। एक बार ख़ैबर के अफ़ग़ान बहुत बिगड़ खड़े हुए; उनको मानसिंह ने भारी शिकस्त दी।

तारीख़ फ़रिश्ता में लिखा है कि आसाम विजय करके मानसिंह ने वहां से १२० हाथी बादशाह को भेजे। इस नज़र से मानसिंह पर अकबर बेहद ख़ुश हुआ। बंगाल, बिहार, दक्षिण और काबुल की सूबेदारी मानसिंह ने बड़ी योग्यता से की। कुछ काल में वे इतने प्रबल हो उठे कि उनके प्रभाव और प्राबल्य को देख कर अकबर भयभीत हो गया। मानसिंह के पञ्जे से बचने के लिए उसने उनकी जीवन-हानि तक करनी चाही; परन्तु इस निंद्य कार्य में उसको सफलता न हुई। उससे उलटा उसीके नाश का द्वार उन्मुक्त हुआ।

अकबर के अनन्तर देहली का सिंहासन शाहज़ादा सलीम (जहांगीर) को मिलने को था। परन्तु अकबर जिस समय मृत्युशय्या पर पड़ा था उस समय महाराजा मानसिंह ने ऐसा खेल खेलना चाहा जिसमें सलीम का हक़ मारा जाय और उनका भानजा ख़ुसरू तख़्त पर बैठे। यह बात अकबर को मालूम हो गई। इस लिए उसने मरने के पहले ही सलीम के सिर पर ताज रखवा दिया। इस समय मानसिंह का देहली में, या उसके पास, रहना उचित न समझा गया। अतएव वे बंगाल को भेज दिये गये और जिस कुटिल-नीति से उन्होंने अपना मनोरथ पूर्ण करना चाहा था उसमें उनको सफलता न हुई। परन्तु कुछ दिनों में उन्होंने उसी तरह की चाल फिर चली। इस बार भी उनको तो कोई विशेष हानि नहीं हुई; परन्तु बेचारा ख़ुसरू सदा के लिए क़ैद कर लिया गया; और उसके पक्षपातियों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। ख़ुसरू सचमुच ही बड़ा बदक़िस्मत शाहज़ादा था। इस बार तो वह बच गया; पर पीछे से शाहजहां ने उसे क़त्ल करवा दिया।

महाराजा मानसिंह ने ख़ुसरू को तो उभाड़ा परन्तु आप इस झगड़े से बाहर रहे। तथापि जहांगीर (सलीम) को इनकी आन्तरिक इच्छा भली भाँति विदित हो गई। उनके पास उस समय कोई बीस हज़ार राजपूत सेना थी। इस लिए उनके डर से जहांगीर मानसिंह को दण्ड नहीं दे सका। परन्तु, कहते हैं, भीतर ही भीतर उसने मानसिंह से कई करोड़ रुपये लिये! शायद ये रुपये जुरमाना के तौर पर लिये गये हों।

१६१५ ईसवी में महाराजा मानसिंह की मृत्यु हुई।

शिक्षाशतक ।

[गत अङ्क के आगे]

(४७)

खल जन पर-परमाणु-समान-
    दूषण पर रखता है ध्यान ॥
पर पहाड़ सम अपना दोष ।
    नहीं सूझता ज्यों दृग-कोष ॥

(४८)

पढ़ लिख कर क्या किया निहाल ।
    जिसने नहीँ सुधारी चाल ॥
हँसते हैं उसको सब लोग ।
    दिन दिन वह पाता अति सोग ॥

(४९)

जिन का है उत्तम आचार ।
    करते कभी नहीँ अपकार ॥
यदपि मूर्ख, आदर के योग ।
    उन्हें समझते हैँ सब लोग ॥

(५०)

होते हैँ वञ्चक जो लोग ।
    रहते नहिँ आदर के योग ॥
करता नहिँ कोई विश्वास ।
    लोगों में होता उपहास ॥

(५१)

सन्मुख कहते मीठे बैन ।
    अपनाते रहते दिन रैन ॥
दाँव पड़े करते हैँ वार ।
    उनसे बच के रहना यार ॥

(५२)

जो अबूझ से व्यर्थ सलाह ।
    ले उसका करते निर्वाह ॥
वे निज सम्मति के अनुसार ।
    काज न कर पाते दुख भार ॥

(५३)

जो है नीति-कुशल मतिमान ।
    देता काज अकेला ठान ॥
काज सिद्ध कर सुख सन्मान ।
    पाता है सब ठौर महान ॥

(५४)

जहाँ नीच पाता सन्मान ।
    गुणियों का होता अपमान ॥
वहाँ ठहरना घड़ी प्रमाण ।
    किसे न होगा कल्प समान ?

(५५)

सत् समाज में रह, खल लोग ।
    तजते नहीँ स्ववृत्ति-प्रयोग ॥
कोयल के साथी हो, काग
    तज सकता क्या आमिष भाग ?

(५६)

जो कुसंगवश ठानं अकाज ।
    दोष समझ, आते नहिँ बाज़ ॥
उन्हें जान अति खोट मिज़ाज ।
    तज देते सब संग समाज ॥

(५७)

क्षणभङ्गुर है जब यह देह ।
    करना वृथा जगत से नेह ॥
नहीँ किसीको दो सन्ताप ।
    रहो सुखी हो कर निष्पाप ॥

(५८)

हिंसा से बढ़ कर के पाप ।
    नहीँ दूसरा जानें आप ॥
निज समान औरों को जान ।
    करिये सब जीवों का त्राण ॥

(५९)

लाये तुम क्या अपने साथ ?
    जाओगे फिर ख़ाली हाथ ॥
इससे कर लो नाम निशान ।
    देकर कुछ दुखियों को दान ॥

(६०)

विषय भोग में पड़के आप ।
    सहते वृथा विविध सन्ताप ॥
जो सच्चे सुख की हो चाह ।
    पकड़ो शीघ्र धर्म की राह ॥

———

जनार्दन झा ।

स्वदेश-प्रीति ।

[सर वाल्टर स्काट के "Love of Country" नामक पद्य-बन्ध का भावार्थ]

[१]

होगा नहीं कहीं भी ऐसा
अति दुरात्मा वह प्राणी
अपनी प्यारी मातृभूमि है
जिससे नहीं गई जानी।
"मेरी जननी यही भूमि है"—
इस विचार से जिसका मन
नहीं उमङ्गित हुआ, वृथा है
उसका पृथ्वी पर जीवन॥

[२]

क्या कोई ऐसा है जिसका
मन न हर्ष से भर जाता,
देश विदेश घूमकर जिस दिन
वह अपने घर के आता ?
यदि कोई है ऐसा, तो तुम
जांचो उसको भले प्रकार
नाम न लेता होगा कोई
करता होगा नहिँ सत्कार॥

[३]

पावै वह उपाधि यदि उत्तम
अथवा लक्ष्मी का भण्डार
लम्बा चौड़ा नाम कमा कर
चाहै हो जावै मतवार।
उसकी सब पदवियां व्यर्थ हैं;
उसके धन को है धिक्कार
केवल अपने तन की सेवा
करता है जो विविध प्रकार॥

[४]

विमल कीर्ति का जीवन भर
वह कभी न होगा अधिकारी,
घोर मृत्यु के पञ्जे में फँस
पावैगा वह दुख भारी।
तुच्छ धूलि से उपजा था वह
उसमें ही मिल जावैगा
उस पापी के लिए न कोई
आंसू एक बहावैगा॥

गौरीदत्त वाजपेयी।

तरुणी।

[अँगरेज़ी कवि बाइरन की "Woman" नामक कविता के आधार पर]

[१]

तुझे देखते प्रेम प्रकटता—
अनुभव यही सिखाता है।
मिथ्या तेरे सब प्रण; इसमें
संशय नहीं दिखाता है॥

[२]

पर तेरी छवि देख ज्ञान की
गरिमा गुम हो जाती है।
सुध बुध रहती नहीं; चित्त में
तू ही तू बस जाती है॥

[३]

तेरा स्मरण; और मिलने की
आशा सुख उपजाती है।
पर निराशता प्रेमी जन का
तन मन सभी जलाती है॥

[४]

तरुणी तू ठग है; तव मिथ्या
बातें चित्त चुराती हैं।
नव नोकैं नीले नयनों की
बारंबार सताती हैं॥

[५]

नयन-बाण तेरा लगते ही
दिल पानी हो जाता है।
त्यों ही तेरी झूठ शपथ पर
झट भरोसा हो आता है॥

[६]

बनी रहै तव प्रीति सर्वदा
मन में नित यह ग्राती है।
पर उसको चल देख घृणा भी
ग्रधिकाधिक ग्रधिकाती है॥

[७]

ग्रचल रहेगी सदा बात यह
इसमें कुछ भी मीन न मेष।
"ज्यों पद-चिन्ह रेणु पर ग्रस्थिर
त्योंही तरुणी-वचन विशेष"॥

गङ्गासहाय।

ग्वालियर।

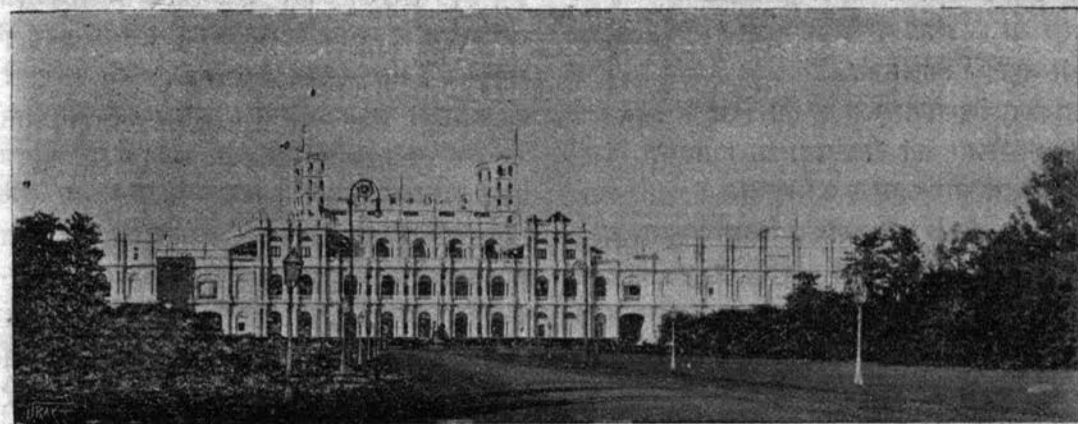

ग्वालियर का राजभवन।

ग्वालियर बहुत पुराना शहर है। बहुत कम शहर उससे ग्रधिक पुराने होने का दावा इस देश में रखते हैं। वह ग्रागरा से ६५ मील ग्रैर इलाहाबाद से ८७७ मील है। वहां रेल का स्टेशन है। ग्रागरे से भी ग्वालियर जाने का रास्ता है ग्रैर झांसी से भी। ग्वालियर २६° १३′ उत्तर ग्रक्षांश ग्रैर ७८° १२′ पूर्व देशांश में है। स्वदेशी रियासतों में ग्वालियर का दूसरा नम्बर है; पहला नम्बर निज़ाम का है। ग्रेट ब्रिटन के स्काटलैण्ड ग्रैर वेल्स, इन दोनों देशों का मिलकर जितना विस्तार है, ग्वालियर राज्य का विस्तार उससे भी ग्रधिक है। योरप में डेनमार्क ग्रैर हालण्ड के सदृश जो छोटे छोटे, परन्तु स्वतन्त्र, देश हैं, ग्वालियर की रियासत उनसे बड़ी है। इस राज्य का क्षेत्रफल २९,००० वर्ग मील है। ग्राबादी कोई ३२,३०,००० है; ग्रैर मालगुज़ारी १,२५,००,००० रुपये हैं।

ग्वालियर में सिन्धे शाखा के मराठों के वंशज बहुत दिनों से राज्य कर रहे हैं। विदेशी होने के कारण हमारे ग्रँगरेज़-राज के ग्रधिकारी यहां के नामों की बड़ी दुर्दशा करते हैं। जिन्होंने लखनऊ का लकनैा; देहली का डेलही; कानपुर का कानपोर कर डाला। उन्होंने सिन्धे का सेंधिया भी कर दिया। पूना के पेशवा बालाजी के ख़िदमतगार रानोजो वर्तमान वंश के नरेशों में पहले नरेश हुए। रानोजो के पुत्र महादजी सेंधिया ने बड़ा नाम पैदा किया।

वीरता में वे अद्वितीय थे। उन्होंने ग्वालियर राज्य के विस्तार को बहुत बढ़ाया और अनेक लड़ाइयों में विजय पाया। ग्वालियर के वर्तमान नरेश महाराजा माधवराव सेंधिया हैं। आप विलायत हो आये हैं; पाश्चात्य सभ्यता में ख़ूब निपुण हैं; अँगरेज़ी विद्या के पारगामी हैं; और इस समय की राजनीति में विशेष कुशल हैं। आपके पिता का नाम महाराजा जियाजीराव सेंधिया था। इनका आकार बहुत भव्य था। पढ़ने लिखने में इनको रुचि कम थी; पर फ़ौजी कामों में इनका दिल ख़ूब लगता था। इनके मरने पर ख़ज़ाने में ५६ करोड़ रुपया नक़द निकला था।

किसी किसीका मत है कि ईसा के ३१० वर्ष पहले ग्वालियर की नीव पड़ी थी। परन्तु विलफ़ोर्ड साहब और जनरल कनिङ्हाम को पता लगा है कि २७५ ईसवी में उसका निर्म्माण हुआ था। जिस समय गुप्तवंशी राजाओं का प्रभुत्व था उस समय उनका एक करद राजा तोरामन (सूर्यमणि?) नामक था। वह वर्तमान गुप्तनरेश से बाग़ी हो गया और यमुना-नर्म्मदा के बीच के देश में उसने अलगही अपनी प्रभुता फैलाई। तोरामन सूर्यवंशी कछवाहा था। उसका पुत्र सूर्यसेन हुआ। २७५ ई० में उसीने ग्वालियर बसाया। सूर्यसेन कुष्ठ रोग से पीड़ित था। ग्वालियर के पास एक पर्वत था। उसका नाम था गोपाचल अथवा गोपगिरि। उस पर ग्वालप नाम के एक महात्मा रहते थे। सूर्यसेन शिकार खेलता हुआ गोपाचल पर आया और महात्मा ग्वालप के उसने दर्शन किये। उस महात्मा ने अपने कमण्डलु से एक चुल्लू भर जल सूर्यसेन को पीने के लिए दिया। उसको पीने से सूर्यसेन का कुष्ठ जाता रहा। अतएव उसने वहां पर एक क़िला बनवाया और उसका नाम ग्वालियावर रक्खा। तब से वह वहीं रहने लगा। यही ग्वालियावर या गोपगिरि धीरे धीरे ग्वालियर हो गया। पुरानी बातों के ज्ञानी ऐसा ही कहते हैं; झूठ सच को राम जानें। महात्मा ग्वालिप ने इस राजा का नाम बदल कर शोभनपाल रक्खा और कहा कि जब तक इस वंश के राजा पाल कहलावेंगे तब तक उनका राज्य बना रहैगा। इस वंश के सब मिला कर ८३ राजे हुए। पर चौरासिवें राजा का नाम तेजकर हुआ; तेजपाल न हुआ। इससे यह वंश राज्यभ्रष्ट हो गया?

ग्वालियर का राज्य कछवाहा राजाओं के हाथ से निकल जाने पर परिहारों का उसपर अधिकार हुआ। इस वंश के ७ राजे हुए। १०३ वर्ष तक इस वंश ने राज्य किया। इस वंश के अन्तिम राजा सारंगदेव के समय में अलतमश ने ग्वालियर पर चढ़ाई की और १२३२ ईसवी में उसने परिहारों को वहां से निकाल दिया। इस विजय की वार्ता को अलतमश ने क़िले के एक फाटक पर खुदवा दिया। बाबर ने अपनी दिनचर्य्या में लिखा है कि विजय-वार्तावाले इस लेख को उसने ख़ुद देखा और पढ़ा था; परन्तु इस समय उसका कहीं पता नहीं है। जब से यह क़िला देहली के बादशाहों के कब्ज़े में आया तबसे उन्होंने उसके भीतर शाही क़ैदख़ाना बनाया। १३७५ ईसवी में राजा वीरसिंहदेव ने इसे मुसल्मानों से छीन लिया।

ग्वालियर के उपर अनेक विपदें आईं और अनेक मुसल्मान स्वामियों के स्वामित्व में उसे रहना पड़ा। वहां के नरेशों ने कभी देहली के बादशाहों को कर दिया; कभी मालवा के होशङ्गशाह को; और कभी जौनपुर के हुसेनशर्क़ी को। १५०५ ईसवी में सिकन्दर लोधी ने ग्वालियर पर चढ़ाई की; परन्तु वहां के तत्कालीन राजा मानसिंह ने उसे मार भगाया। १५१७ में उसने आगरे आकर ग्वालियर विजय की बड़ी भारी तैयारी की; परन्तु चढ़ाई करने के पहले ही वह मर गया। ग्वालियर-विजय में इब्राहीम लोधी को कामयाबी हुई। उसने ३०,००० सवार, ३०० हाथी और बहुत सी पैदल फ़ौज भेज कर ग्वालियर को घेर लिया। घेरे ही के समय मानसिंह की मृत्यु हुई। मानसिंह के पुत्र विक्रमादित्य ने भी एक वर्ष तक मुसल्मानों की दाल नहीं

गलने दी। घेरा बराबर जारी रहा। अन्त को उसने आधीनता स्वीकार करली और वह आगरे को भेज दिया गया।

तोमरवंश के ग्वालियर-नरेशों में मानसिंह बड़ा प्रतापी हुआ। उसने बहुत अच्छी अच्छी इमारतें बनवाईं। ग्वालियर के उत्तर-पश्चिम जो मोतीझील है वह उसीकी खुदाई हुई है। कला-कौशल को उसने बड़ी उन्नति की। उसने पत्थर का एक हाथी बनवाया था; उस पर पत्थर ही के दो आदमी हौदे में सवार थे। हाथी की मूर्ति बहुत ही अच्छी बनी थी। बाबर और अबुल्फ़ज़्ल ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है।

बीच में ग्वालियर फिर स्वतन्त्र हो गया; इस लिये बाबर ने एक बहुत बड़ी फ़ौज भेज कर उसे पुनर्वार जीता। जब शेरशाह का प्रभुत्व बढ़ा, तब, १५४२ ई० में, ग्वालियर के मुसल्मान गवर्नर अबुल्-क़ासिम ने उसे शेरशाह को दे दिया। विक्रमादित्य के बेटे ने बहुत चाहा कि वह मुसल्मानों से ग्वालियर छीनले। बड़ी वीरता से उसने ग्वालियर पर धावा किया। कई दिन तक लड़ाई हुई। पर उसकी हार हुई और वह चित्तौर को भग गया। १७६१ ईसवी में गोहद के जाट राना भीमसिंह ने ग्वालियर को मुसल्मानों को डाढ़ से निकला। कुछ काल में मराठों ने उसे छीन लिया। १७७९ में मेजर पोफम ने मराठों को वहां से निकाल कर उसे फिर गोहद के राना को दे दिया। १७८४ में महादजी सेंधिया ने फिर इसे अपने कब्ज़े में कर लिया; और १८०३ ई० में जनरल ह्वाइट ने फिर इसे छीना। पर १८०५ में अंगरेज़ों ने उसे पुनर्वार मराठों ही के अधिकार में जाने दिया। १८४४ में, महाराजपुर और पनिहर की लड़ाइयों के बाद, फिर ग्वालियर पर अंगरेज़ों का दख़ल हो गया। इस तरह इस प्राचीन नगर की अनेक बार छीन छान हुई। उसके छीननेवालों में अनेक ऐसे होंगे जिनका नाम तक इस समय कोई नहीं जानता; नामशेषता भी जिनकी शेष नहीं रह गई। पर ग्वालियर अभी तक बना है; उसका क़िला भी यथास्थित है।

१८५७ के विद्रोह में सेंधिया की फ़ौज तांतिया टोपी को बाग़ी फ़ौज से मिल गई। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई भी उस समय वहां पहुँची। पीछे से जो भीषण संग्राम हुआ उसका संक्षिप्त वर्णन लक्ष्मीबाई के चरित में प्रकाशित हो चुका है। अतएव उसके पुनरुल्लेख की आवश्यकता नहीं।

जिस समय १७९४-१८०५ में दौलतराव सेंधिया का अधिकार ग्वालियर पर हुआ उस समय उसने अपना लश्कर (पड़ाव) किले के दक्षिण तरफ़ डाला। कुछ दिनों में सेना के तम्बू तो उखड़ गये; पर पड़ाव वहां पर वैसे ही पड़ा रहा। धीरे धीरे वहां पर एक शहर बस गया। उसीका नाम लश्कर पड़ा। महाराष्ट्र लोग ग्वालियर को लश्कर ही कहते हैं। लश्कर ही इस समय सेंधिया की राजधानी है। इस शहर का सराफ़ा बाज़ार देखने लायक़ है। उसकी सड़क बहुत चौड़ी है और दूर तक चली गई है। उसके दोनों ओर पत्थर के ऊंचे ऊंचे मकान हैं। फूलबाग नामक एक बहुत ही सुन्दर उद्यान में महाराजा सेंधिया का नया महल है। यह शहर से बिलकुल मिला हुआ है। लश्कर के बीच में बाड़ा यानी पुराना महल है। बड़े बड़े सरदार और राजकारियों के मकान भी वहीं, आस पास, हैं।

नई इमारतों में से विक्टोरिया कालेज, डफ़रिन सराय, मेहमान-घर (Guest House), महाराजा सेंधिया का महल और जयेन्द्र-भवन नामक प्रासाद देखने की चीज़ें हैं।

ग्वालियर के पास एक जगह मुरार है। यहां पर पहले अंगरेज़ी छावनी थी। पर गवर्नमेण्ट ने उसके बदले, झांसी लेकर, मुरार सेंधिया को दे दिया। मुरार एक बहुत छोटी, पर बहुत साफ़ और स्वास्थ्यकर, जगह है।

ग्वालियर का नाम लेने से जुदे जुदे तीन शहरों का बोध होता है। मुरार, लश्कर और पुराना

ग्वालियर का सराफ़ा बाज़ार।

ग्वालियर। इनमें से लश्कर की दैनन्दिन उन्नति हो रही है और ग्वालियर की अवनति। पुरानी चीज़ की क़दर अवश्य ही कम हो जाया करती है। फिर भी ग्वालियर में कई ऐसी चीज़ें विद्यमान हैं जिनकी अब तक क़दर होती है।

ग्वालियर में एक बहुत ही सुन्दर पुरानी जुमा मसजिद है। गिलट किये हुए उसके गगनभेदी मीनार और गुम्बज़ अभी तक देखने लायक़ हैं। उसकी मेहराबों पर क़ुरान की आयतें कूफ़िक लिपि में बड़ी सुघराई से खुदी हुई हैं। स्लीमान साहब ने अपनी रैम्बल्स (Rambles) नामक किताब में इसकी खूब तारीफ़ की है। शहर के बाहर महम्मद ग़ौस नामक एक महात्मा की क़बर है। बाबर और अकबर के समय में महम्मद ग़ौस की बड़ी महिमा थी। यह इमारत बिलकुल पत्थर की है और मुसलमानी ज़माने की पहली इमारतों में यह बहुत अच्छी समझी जाती है। यह क़बर अकबर के समय में बनी थी। इसका क्षेत्रफल १०० वर्ग फ़ुट है। इसके चारों तरफ़ चार मीनार हैं। इसका पत्थर कुछ कुछ पीलापन लिये हुए है। इसका प्रांगण ४३ वर्ग फ़ुट है और दीवारें ५१ फ़ुट ऊंची हैं। इसका मण्डप भी खूब ऊंचा है। इसमें जाली का जो काम है वह कहीं कहीं पर बहुत ही खूबसूरत है।

पुराने ग्वालियर में विख्यात गायक तानसेन की भी समाधि है। वह बिलकुल खुली हुई है; और छोटी है। उसका क्षेत्रफल सिर्फ़ २२ वर्ग फ़ुट है। इस समाधि के पास इमली का एक पेड़ है। गायक लोग उसका बड़ा मान करते हैं; उसकी पूजा तक करते हैं। उसकी पत्तियों को रण्डियां बड़े आदर से चाबती हैं; पत्तियां न मिलने पर वे उसकी छाल तक खा जाती हैं। उनका ख़याल है कि ऐसा करने से उनकी आवाज़ बहुत ही मीठी और सुरीली हो जाती है। मालूम नहीं, इस समय, यह इमली बनी हुई है कि छाल-डाल समेत रण्डियां उसे हज़म कर गईं।

ग्वालियर में सबसे अधिक दर्शनीय इमारत वहां का पुराना क़िला है। वह इतना मज़बूत है कि कोई कोई उसे हिन्दुस्तान का जिबराल्टर कहते हैं। जिबराल्टर का वर्णन ठाकुर गदाधरसिंह

महाराज माधवराव सेंधिया, ग्वालियरनरेश ।

महाराजा जियाजीराव सेंधिया ।

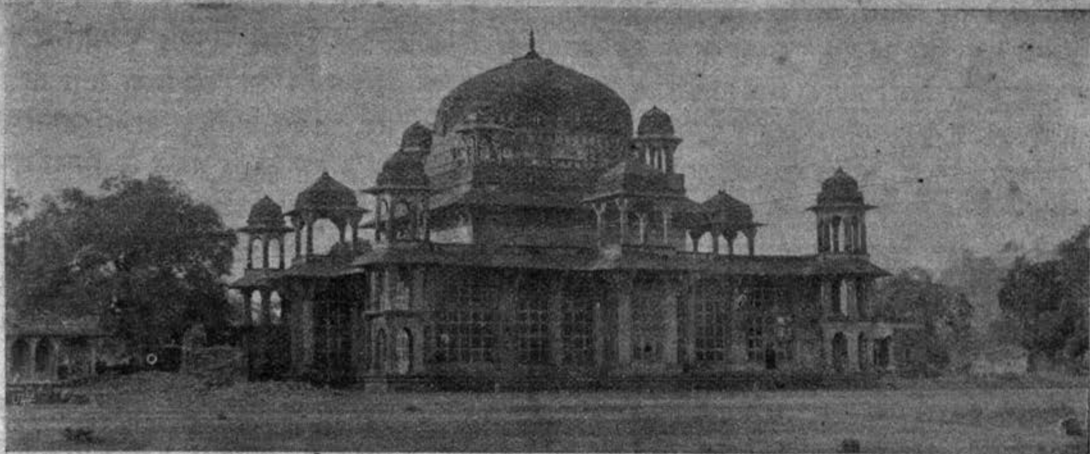

मुहम्मद ग़ौस की दरगाह

ने अपनी "यडवर्ड-तिलक* यात्रा" में ख़ूब किया है। यह क़िला एक पहाड़ी पर बना है। दूर से देखने में वह पहाड़ का एक छोटा सा टुकड़ा मालूम होता है; क़िला नहीं मालूम होता। जिस पहाड़ी पर वह बना हुआ है वह शहर से ३०० फ़ुट ऊंची है। वह उत्तर-दक्षिण १३/४ मील लम्बी है। चौड़ाई उसकी ६०० फ़ुट से २८०० फ़ुट तक है। उसकी दीवारें ३० से ३५ फ़ुट तक ऊंची हैं। इस किले के भीतर कई चीज़ें दर्शनीय हैं। उनमें से मानमन्दिर, कर्णमन्दिर, विक्रममन्दिर इत्यादि पुरातन राजप्रासाद और सासबहू का मन्दिर, तेली का मन्दिर और कई एक जैनमन्दिर और मूर्तियां मुख्य हैं। क़िले के ऊपर चढ़कर चारों तरफ़ देखने से ग्वालियर की अपूर्व शोभा एक ही साथ आंखों के सामने आ जाती है। सब ओर पर्वत ही पर्वत देख पड़ते हैं। यहां तक कि धवलपुर तक की पहाड़ियां दिखलाई देती हैं। ग्वालियर के पास गेरू की अनेक पहाड़ियां हैं; उनकी शोभा विलक्षण ही जान पड़ती है। वर्षा ऋतु में, जब सब पर्वतमालायें हरी भरी हो जाती हैं, तब क़िले के ऊपर चढ़कर उसके चारों तरफ़ देखने से नेत्र निर्निमेष होकर उस प्राकृतिक दृश्य में ऐसे अटक जाते हैं मानों वे वहां पर जड़ दिये गये हों।

क़िले में प्रवेश करने का उत्तर-पूर्व की तरफ़ जो मार्ग है उसमें ६ फाटक हैं। पहले का नाम आलमगीरी फाटक है। औरङ्गज़ेब के वक्त में ग्वालियर के मुसलमान गवर्नर ने उसे १६६० ईसवी में बनवाया था। यह फाटक सादा है। इसके भीतर एक बड़ा कमरा है जहां मुसलमानी न्यायाधीश बैठकर न्याय करते थे। इसीलिए उसका नाम कचहरी है।

दूसरे फाटक का नाम बादलगढ़ है। राजा मानसिंह के चचा का नाम बादलसिंह था। उसी के नाम पर इसका नामकरण हुआ है। इसके बाहर एक हिँडोला पड़ा रहता था; इससे लोग इसे हिँडोलाफाटक भी कहते हैं। यह हिन्दू-नमूने का फाटक है और अच्छा बना है। यहां पर एक लोहे की चद्दर है। उस पर एक लेख खुदा है। उसमें लिखा है कि ग्वालियर के गवर्नर सैयद आलम ने १६४८ ईसवी में उसकी मरम्मत की।

यहां पर, पहाड़ी के नीचे, दाहनी तरफ़, गूजरी महल नाम का सुन्दर राज-प्रासाद है। राजा

*यह ३०० पृष्ठ की पुस्तक भारती प्रेस, कानपुर में, ॥=) में मिलती है।

मानसिंह ने उसे अपनी प्यारी रानी गूजरी के लिए बनवाया था। वह ३०० फ़ुट लम्बा और २३७ फ़ुट चौड़ा है। वह दोमंज़िला है। वह पत्थर काटकर बनाया गया है। इस समय वह उजाड़ पड़ा है।

तीसरे फाटक का नाम भैरव दरवाज़ा है। भैरवसिंह नाम का एक कछवाहा राजा यहां हो गया है। उसीके नाम से यह फाटक प्रसिद्ध है। इस पर भी एक लेख है। वह १४८५ ईसवी का है। उसके एक ही वर्ष बाद प्रसिद्ध राजा मानसिंह ग्वालियर की गद्दी पर बैठे थे।

चौथा फाटक गणेश दरवाज़ा है। वह १४२४–१४५४ ईसवी के बीच का बना है। उसके बाहर "कबूतरख़ाना" नाम की एक जगह है। वहीं ६० फ़ुट × ३९ फ़ुट × २५ फ़ुट का एक गहरा तालाब है। उसका नाम नूर-सागर है। उसमें ख़ूब पानी रह सकता है। यहीं महात्मा ग्वालिप का एक मन्दिर है। उसके पासही मुसल्मानों ने एक छोटी सी मसजिद खड़ी कर देने की कृपा की है। १६६४ ईसवी का खुदा हुआ एक मुसल्मानी शिलालेख उस पर जगमगा रहा है। उसका मतलब यह है—"यह दुष्ट ग्वालो का मन्दिर था; इसमें उसकी मूर्ति भी थी। वह तोड़ डाली गई और मन्दिर बन्द कर दिया गया। ख़ूब चमकीले चन्द्रमा के समान सारी दुनिया को रोशन करनेवाले आलमगीर (औरङ्गज़ेब) ने अपने राज्यकाल में यह मसजिद बनवाई। मसजिद नहीं बल्कि इसे स्वर्ग-मन्दिर कहना चाहिए"। सम्भव है, जो मन्दिर इस समय ग्वालिप के नाम से प्रसिद्ध है, वह पीछे से बना हो।

पाँचवें फाटक लक्ष्मण दरवाज़े पर पहुंचने के पहले एक मन्दिर मिलता है। वह चतुर्भुज के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। वह पहाड़ की ठोस चट्टान को काटकर बनाया गया है। वह विष्णु का मन्दिर है और बहुत पुराना है। वह ८७६ ईसवी का बना हुआ है। उसमें एक शिलालेख भी है। यहां पर एक तालाब है; उसके सामने ताजनिज़ाम की क़बर है। इब्राहीम लोधी के समय में यह देहली के अमीरों में था। १५१८ ईसवी में इस फाटक पर हल्ला करते वक्त वह मारा गया था।

हथियापौर, अर्थात् हाथीदरवाज़ा, मानसिंह ने बनवाया था। वह उसके महल से मिला हुआ है। यहीं पर पूर्वोल्लिखित हाथी की एक मूर्ति थी।

इस क़िले में उत्तर-पश्चिम की तरफ़ तीन फाटक हैं। और दक्षिण-पश्चिम की तरफ़ आने जाने का जो रास्ता है उसमें पाँच फाटक हैं। इन पाँच में से तीन फाटकों को जनरल व्हाइट ने तोड़ डाला था।

ग्वालियर के क़िले के भीतर पानी का बड़ा सुकाल है। उसमें अनेक कुँवे, तालाब और कुण्ड हैं। इसी कारण से, उत्तरी हिन्दोस्तान में, वह बहुत ही दृढ़ और अप्रवेश्य क़िला समझा जाता है। उसके भीतर सूर्य-कुण्ड सबसे पुराना है। वह २७५ ईसवी के लगभग बना था। वह ३५० फ़ुट लम्बा और १८० फ़ुट चौड़ा है। वह गहरा भी ख़ूब है। उसके सिवा तिकोनिया तालाब, जौहर-तालाब, सास-बहू का तालाब, गङ्गोला-तालाब और धोबी-तालाब आदि और भी कई तालाब हैं और सब बड़े बड़े हैं। जब अलतमश ने ग्वालियर पर क़ब्ज़ा किया था तब वहां की राजपूत स्त्रियां जौहर करके जल मरी थीं। जौहर-तालाब उसीका स्मरण दिलाता है और है भी उसी जगह जहां जौहरनामी स्त्रीमेध यज्ञ हुआ था।

ग्वालियर के क़िले में ६ पुराने महल हैं; उनमें से गूजरीमहल का ज़िकर ऊपर आचुका है। दूसरे का नाम मान-मन्दिर है। वह ग्वालियर के प्रसिद्ध राजा मानसिंह का महल है। वह १४८६–१५१६ के क़रीब बना था। १८८१ में उसकी मरम्मत की गई है। उसका नाम चित्र-मन्दिर भी है। यह नाम इसलिए पड़ा है कि उसकी दीवारों पर चित्रों की बहुत अधिकता है। हंस, हाथी, मोर आदि के जो चित्र यहां पर बने हैं उनका रंग अभी तक ख़राब नहीं हुआ है; देखने से जान पड़ता है कि अभी कल का है। चित्र भी बहुत सुन्दर और चित्ताकर्षक

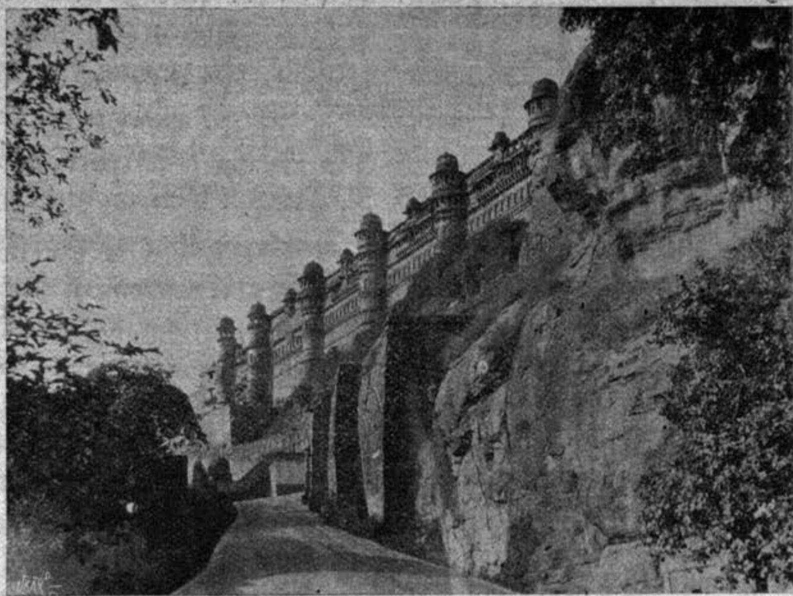

मानमन्दिर, ग्वालियर।

हैं। इस महल के दो खण्ड ऊपर हैं और दो ही नीचे! परन्तु, आप जानते हैं इसमें आज कल रहता कौन है? इसमें रहते हैं बूढ़े बूढ़े चिमगादड़ों के कुटुम्ब! पूर्व की तरफ़ वह ३०० फुट लम्बा और १०० फुट ऊंचा और दक्षिण की तरफ़ १६० फुट लम्बा और ६० फुट ऊंचा है। उत्तर और पश्चिम की तरफ़ वह बरबाद हालत में पड़ा है। उसमें जहां जहां पर गवाक्ष-जाल—जाली का काम—है, वहां वहां पर, बहुत बड़ी कारीगरी की गई है। इस महल की सुन्दरता की वे लोग भी प्रशंसा करते हैं जो पुराने ज़माने की यञ्जिनियरी की जांच करने में बहुत मशहूर समझे जाते हैं।

मानमन्दिर से उत्तर कर्ण-मन्दिर है। उसे कीर्ति-मन्दिर भी कहते हैं। वह दोमञ्ज़िला है। उसका एक कमरा ४३ फुट लम्बा और २८ फुट चौड़ा है। उसमें बहुतही ख़ूबसूरत खम्भों की दो लैनें हैं; उन्हींके सहारे उसकी छत थँभी है। इस महल में पलस्तर का काम देखने लायक़ है।

मान-मन्दिर और कर्ण-मन्दिर के बीच में विक्रम-मन्दिर है।

क़िले के उत्तर तरफ़ जहांगीर और शाहजहां के महल हैं। इनमें कोई विशेषता नहीं है।

इस क़िले के भीतर हिन्दुओं के ११ मन्दिर हैं—

(१) ग्वालिप का मन्दिर　(७) जैनमन्दिर
(२) चतुर्भुज का मन्दिर　(८) सूर्यदेव
(३) जयन्ती-थोरा　(९) मालदेव
(४) तेली का मन्दिर　(१०) धोंडादेव
(५-६) सास बहू का मन्दिर　(११) महादेव
[(८)–(११)] के मन्दिर

ये जितने मन्दिर हैं सबको मुसल्मानों ने थोड़ा बहुत छिन्न भिन्न कर दिया है; परन्तु अब तक उनकी पूजा-अर्चा कभी कभी होती है और दूर दूर से लोग उनको देखने आते हैं। ग्वालिप और चतुर्भुज के मन्दिरों का नाम ऊपर आ चुका है। जयन्ती-थोरा में "थोरा" शब्द का क्या अर्थ है समझ में नहीं आता। १२३२ ईसवी में अल्तमश ने इसको गिराकर इसे नाम-शेष कर दिया। पर

इसकी जगह अब तक मालूम है; वहां पर पन्द्रहवीं सदी के कुछ शिलालेख भी हैं।

तेली का मन्दिर एक प्रसिद्ध मन्दिर है। वह ग्यारहवीं शताब्दी का बना हुआ है। १८८१ में उसकी मरम्मत हुई है। लेगों को विश्वास है कि वह किसी तेली का बनवाया हुआ है। वह ६० वर्ग-फ़ुट में बना हुआ है। ग्वालियर में इससे ऊंची इमारत और कोई नहीं है। इसका द्वार ३५ फ़ुट ऊंचा है; इसके ऊपर, बीच में, गरुड़ की एक बहुत अच्छी मूर्ति है। आदि में वह विष्णु का मन्दिर था; परन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी से वह शिवालय हो गया है। यह सारी इमारत सैकड़ों प्रकार की मूर्तियों से भरी पड़ी है। इसकी मूर्तियां इत्यादि जो फोड़ फाड़ डाली गई थीं, या जो गिर पड़ी थीं, ढूंढ़ ढूंढ़ कर मन्दिर के पास रख दी गई हैं।

सास-बहू के नाम के दो मन्दिर हैं—एक बड़ा, दूसरा छोटा। लेगों का ख़याल है कि किसी "सास-बहू" ने उनको बनवाया था। कोई कोई इन मन्दिरों का नाम "सहस्रबाहु" बतलाते हैं। परन्तु ये दोनों नाम निर्मूल जान पड़ते हैं। क्योंकि बड़े मन्दिर के भीतर बरामदे में एक बहुत लम्बा शिलालेख खुदा हुआ है। उसमें इसका नाम "पद्मनाथ" लिखा है। यह शिलालेख संवत् ११५० अर्थात् सन् १०९३ ईसवी का है। यह मन्दिर महीपाल नामक कछवाहा (कच्छपारि) राजा का बनवाया हुआ है। बड़ा मन्दिर १०० फ़ुट लम्बा और ६३ फ़ुट चौड़ा है। उँचाई उसकी इस समय सिर्फ़ ७० फ़ुट है। परन्तु जनरल कनिंहाम अनुमान करते हैं कि किसी समय वह १०० फ़ुट ऊंचा था। इस मन्दिर में पत्थर का काम बहुतही अच्छा है। इसके बीच का कमरा ३१ वर्ग फ़ुट है। इसकी छत बहुतही बड़ी और भारी है। उसका बोझ थाँभने में सहायता देने के लिए चार बड़े बड़े खम्भे हैं। छत को देखकर आश्चर्य होता है। उसकी बनावट को देखकर उसके बनानेवाले कारीगरों की सहस्रमुख से प्रशंसा करने को जी चाहता है। छोटा मन्दिर चारों तरफ़ से खुला हुआ है। उसमें १२ खम्भे हैं। खम्भे सब गोल हैं। उसमें, और, बड़े मन्दिर में भी, नर्तकी स्त्रियों की बहुत सी मूर्तियां खुदी हुई हैं। उनमें बड़ी कारीगरी दिखलाई गई है।

सास-बहू के बड़े मन्दिर में जो शिलालेख है उसके विषय में हमको कुछ कहना है। यह लेख पहले पहल हमने डाक्टर राजेन्द्रलाल की "इण्डो-आर्यन्स" नामक पुस्तक में देखा। परन्तु वहां पर यह बहुत ही त्रुटितदशा में था; इससे इसकी तरफ़ हमारा ध्यान अच्छी तरह नहीं गया। पर, "इण्डियन ऐण्टिक्वेरी" में जब हमने कीलहार्न साहब के द्वारा सम्पादित किया हुआ यह लेख देखा, तब हम इस की सुन्दरता और रचनावैचित्र्य पर मोहित हो गये। इसलिए इसकी मूललिपि को देखने के लिए हमारे चित्त में प्रबल इच्छा जागृत हो उठी। इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए हम शीघ्र ही झाँसी से ग्वालियर गये। वहां हमने इस प्रशस्ति-रूप लेख को प्रत्यक्ष देखा और क़िले में जितनी इमारतें देखने लायक़ थीं उनको भी देखा।

गोपगिरि (ग्वालियर) में पद्मपाल नामक एक राजा था। उसने "मेरु पर्वत के समान" एक बहुत ऊंचा विष्णु-मन्दिर बनवाना आरम्भ किया। वह बन न चुका था कि राजा मर गया। उसके पीछे उसके भाई सूर्यपाल का पुत्र महीपाल राजा हुआ। उसने सिंहासन पर बैठतेही दो काम किये। एक तो उसने इस मन्दिर को पूरा किया; दूसरे राज-कन्या के लिए एक अच्छा वर ढूंढ़ कर उस का विवाह कर दिया। इस विषय का शिलालेख सुनिए—

तच्च द्वयं कृतमनेन विवेकभाजा
राजात्मजा मदनपालवराय दत्ता।
श्रीपद्मनाथसुरमन्दिरमेतदुच्चै-
र्नीतं समाप्तिमविनाशि यशःशरीरम्॥

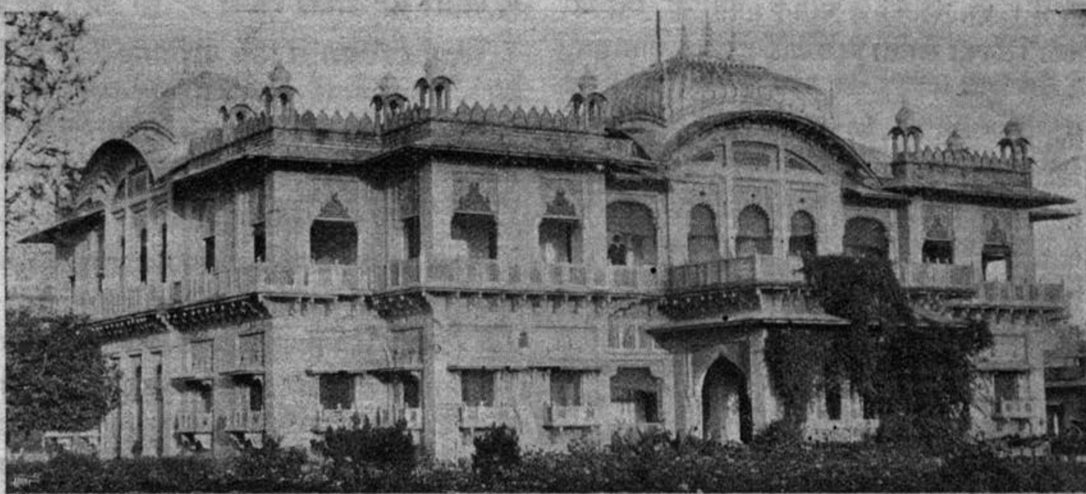

मेहमान-घर।

कनिंहाम साहब ने इसकी उंचाई जो १०० फुट अनुमान की है सो ठीक मालूम होती है। इस शिलालेख में, इस मन्दिर की उंचाई के विषय में, इस तरह लिखा है—

प्रजाभर्त्रा तेन क्षितितिलकभूतेन सदनं
हरेर्धर्म्मज्ञेन त्रिदशसदृशा कारितमदः।
वदाम्यस्योच्चैस्त्वं कथमिव गिरा यस्य शिखरं
समारूढ़ः सिंहो मृगमिव मृगाङ्कस्थमशितुम्॥

अर्थात् इस प्रजापालक, धर्मज्ञ, नरपतितिलक, पद्मपाल राजा के बनवाये हुए इस विष्णु-मन्दिर की उंचाई मैं वाणी से किस प्रकार वर्णन करूं? यह तो इतना ऊंचा है कि इसके शिखर पर बैठा हुआ सिंह, मृगाङ्क (चन्द्रमा) के मृग को, मानो निगल जाने चाहता है!

इस मन्दिर में जो शिलालेख है वह प्रशस्ति के रूप में है। उसमें ११२ श्लोक हैं। उनमें पहले पद्मपाल के वंशजों का थोड़ा थोड़ा वर्णन है; फिर स्वयं पद्मपाल का। पद्मपाल का वर्णन कुछ अधिक है। परन्तु लेख का अधिक भाग राजा महीपाल की तारीफ़ से भरा हुआ है। महीपालही की आज्ञा से यह प्रशस्ति बनी थी। संस्कृत में सबसे अच्छे काव्य का यह एक उत्कृष्ट नमूना है। यह कविता मणिकण्ठसूरि नामक कवि की रचना है। माहुल सिंहराज और पद्मनाभ नाम के दो शिल्पियों ने इस प्रशस्ति को खोदा था। मणिकण्ठ ने इसकी रचना ११४९ वैक्रमीय सम्वत् में की थी। मणिकण्ठजी अपनी तारीफ़ इस प्रकार करते हैं—

भारद्वाजेन मीमांसान्यायसंस्कृतबुद्धिना।
कवीन्द्ररामपौत्रेण गोविन्दकविसूनुना॥ १०४॥
कविना मणिकण्ठेन सुभाषितसरस्वता।
प्रशस्तिर्द्विजमुख्येन रचितेयमनिन्दिता॥ १०५॥

मणिकण्ठ के पिता भी कवि थे और पितामह भी। फिर मणिकण्ठ भला क्यों न अच्छे कवि होते? आप कवि भी थे, नैय्यायिक भी थे; और मीमांसक भी थे। सुभाषित के तो आप समुद्रही थे! मणिकण्ठ की यह पिछली उक्ति हमको बहुत अच्छी लगी। क्योंकि अपने को सुभाषित का समुद्र बतलाने में मणिकण्ठ ने गर्वोक्ति नहीं कही; बात सच्ची कही है। आपने इस प्रशस्ति में जो महीपाल की प्रशंसा की है उस प्रशंसा के अन्तर्गत आपने २५ श्लोक ऐसे कहे हैं जो दो दो अर्थों से भरे हुए हैं और बड़ेही

अपूर्व हैं। इन श्लोकों में आपने महीपाल राजा से जिनकी जिनकी समता दिखलाई है उनके नाम हम नीचे देते हैं—

१ ब्रह्मा	९ सूर्य	१७ कर्ण
२ विष्णु	१० चन्द्रमा	१८ समुद्र
३ बलभद्र	११ व्यास	१९ सिंह
४ काम	१२ भगीरथ	२० हाथी
५ शङ्कर	१३ रामचन्द्र	२१ कमल
६ कार्तिकेय	१४ युधिष्ठिर	२२ कैरव
७ इन्द्र	१५ भीम	२३ आभूषण
८ कुबेर	१६ अर्जुन	२४ चन्दन
		२५ कृष्ण

प्रति श्लोक के चौथे चरण में कवि ने महीपाल से यह पूछा है कि जिनकी समता आपमें पाई जाती है, बतलाइए, उनके आप कौन हैं ? अर्थात् उनसे आपका क्या सम्बन्ध है ? विषयान्तर हुआ जाता है; परन्तु यह कविता ऐसी अच्छी है कि हम इसके दो एक उदाहरण दिये बिना नहीं रह सकते। महीपाल का विष्णु में साम्य देखिए—

लक्ष्मीपतिस्त्वमसि पङ्कजचक्रचिन्हं
पाणिद्वयं वहसि भूप भुवं बिभर्षि।
श्यामं वपुः प्रथयसि स्थितिहेतुरेक-
स्त्वंकोऽसि नीतिविजितोद्धव माधवस्य। ३६

आप लक्ष्मीपति अर्थात् सम्पत्तिमान् हैं; आपके करद्वय में कमल और चक्र के चिन्ह हैं; आप पृथ्वी को धारण (पालन) करते हैं; आपका शरीर श्यामल है; आप ही की स्थिति से सब (प्रजा) की स्थिति है; नीति में आपने उद्धव को भी जीत लिया है। अतएव, कहिए, आप विष्णु के कौन हैं ? क्योंकि वे भी लक्ष्मीपति हैं; उनके भी हाथों में कमल और चक्र हैं; उन्होंने भी (वाराह हो कर) पृथ्वी को धारण किया है; उनका भी शरीर श्यामल है; पालनकर्ता होने के कारण वे भी सबकी स्थिति के हेतु हैं; और उन्होंने भी उद्धव को नीति में परास्त किया है!

अब कमल की समता देखिए—

सद्म श्रियस्त्वमसि मित्र कृतप्रमोद-
स्त्वं राजहंससमलंकृतपादमूलः।
स्वामिन्नधःकृतजड़ोऽसि गुणाभिरामः
कस्त्वं मिताढ्यमुखपङ्कजपङ्कजस्य॥५५॥

अधखिले कमल के समान मुसकान-युक्त मुख-कमल को धारण करनेवाले हे स्वामिन्, आप लक्ष्मी के घर हैं, (राजाओं के यहां लक्ष्मी की कमी नहीं); मित्रों से आपको आनन्द प्राप्त होता है; राजाओं में हंस के समान शोभायमान राज-वर्ग आपके चरणों की शोभा बढ़ाया करते हैं, अर्थात् पैरों पर लोटा करते हैं; जड़ों को आपने नीचा दिखाया है; शौर्य औदार्य आदि गुणों से आप रमणीय हो रहे हैं। अतएव कृपा करके बतलाइए आप कमल के कौन हैं; क्योंकि, कमल में भी यही सब बातें पाई जाती हैं। वह भी लक्ष्मी का घर है (कहते हैं कमल में लक्ष्मी रहती है); मित्र (सूर्य) के उदय से उसे भी प्रसन्नता होती है; उसके भी पादमुल (जड़) की शोभा राजहंस पक्षी बढ़ाते हैं; उसने भी जल (जड़—ल और ड़ का अभेद माना जाता है) को नीचे कर दिया है, अर्थात् वह सदैव जल के ऊपर रहता है; उसमें भी गुणों (तन्तुओं) की रमणीयता रहती है!

ग्वालियर के क़िले में शेष जो चार मन्दिर हैं वे विशेष प्रसिद्ध नहीं हैं; इस लिए उनके विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

यहां पर जैनों का एक मन्दिर है। वह ११०८ ईसवी के लगभग का बना हुआ है। वह हथिया-पौर और सासबहू के मन्दिरों के बीच में है। क़िले की पूर्वी दीवार से सटकर वह बना हुआ है। उसे पहले बहुत कम लोग जानते थे। १८४४ ई० में जनरल कनिंहाम ने उसका पता लगाया और उसकी प्रसिद्धि की।

क़िले की दीवार के ठीक नीचे पहाड़ी के भीतर चट्टानों को काट कर जो मूर्तियां यहां पर बनी हैं,

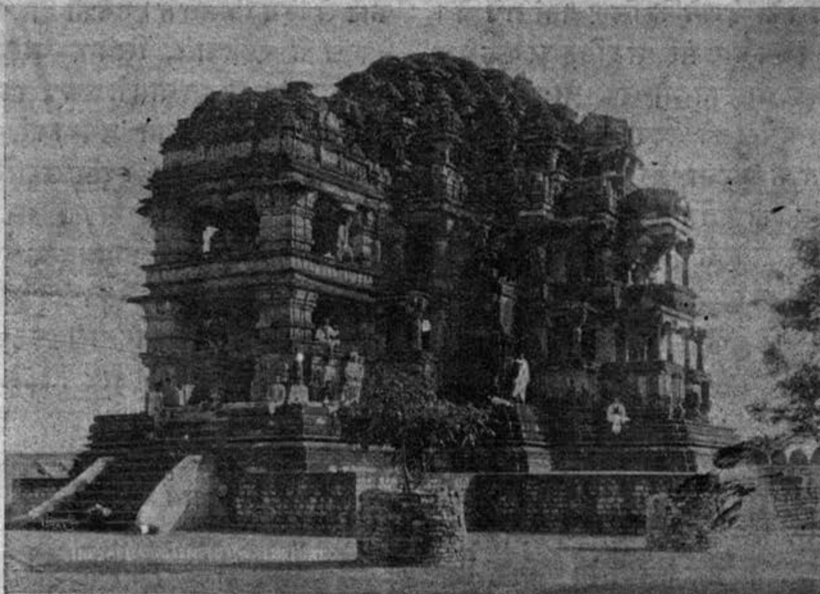

सासबहू का मन्दिर

वे उत्तरी भारतवर्ष में अद्वितीय हैं। वे अनेक हैं और बहुत बड़ी बड़ी हैं। पर्वत में गुफ़ायें खोदी गई हैं; उन्हींके भीतर पत्थर काट काट कर ये मूर्तियां बनाई गई हैं। सब मिलाकर २१ मूर्तियां हैं। कोई कोई मूर्ति ५० फ़ुट से भी अधिक ऊंची है। ये मूर्तियां आदिनाथ, नेमिनाथ, महावीर और चन्द्रप्रभ आदि जैन तीर्थङ्करों की हैं और प्रायः पन्द्रहवीं शताब्दी की बनी हुई हैं। इनमें से बहुतेरी मूर्तियां बाबर के हुक्म से १५२७ ईसवी में तोड़ डाली गई थीं। उस समय उनको बने हुए कोई ६० ही वर्ष हुए थे। इस विषय में बाबर ने अपनी दिनचर्य्या में एक जगह लिखा है—"जैनों ने इस पहाड़ी को काट कर मूर्तियां बनाई हैं। कोई मूर्ति छोटी है; पर कोई चालीस चालीस फ़ुट ऊंची है। ये सब मूर्तियां नंगी हैं। उन पर कपड़े का एक टुकड़ा भी नहीं है। यह स्थान बहुत रमणीय है; परन्तु इसमें सबसे बड़ा दोष यह है कि यहां मूर्तियों की अधिकता है। मैंने हुक्म दिया था कि सब मूर्तियां बरबाद कर दी जायं। पर वे बिलकुल तोड़ी नहीं गईं; केवल छिन्न भिन्न कर डाली गईं। अब मैंने सुना है कि टूटे हुए सिरों को जैनों ने मरम्मत कराके उन्हें यथास्थान जुड़वा दिया है"। तोमर-वंशी राजाओं के समय के कई शिलालेख इन गुफ़ाओं के भीतर हैं। ग्वालियर के क़िले में ये गुफ़ा-मन्दिर और मूर्तियां भी देखने की चीज़ हैं।

बादशाही कारागार क़िले के पश्चिम तरफ़ है। उसमें नौ कमरे हैं; इस लिए उसका नाम नौचौकी पड़ गया है। यहीं पर औरंगज़ेब ने अपने बेटे महम्मद और अपने भाई दारा और मुराद के बेटों को क़ैद रक्खा था।

नेपल्स की कासानोवा नामक औद्योगिक शाला।

नेपल्स योरपखण्ड के इटाली देश में हैं। वह व्यापार का एक बड़ा शहर है। वहीं कासानोवा नामकी एक औद्योगिक शाला (इंस्टिट्यूट) है। कुछ दिन हुए मिस्टर एच० ओ०

कुइन साहिब उसको देखने के लिए वहां गये थे। उन्होंने उसका वर्णन और संक्षिप्त इतिहास एक लेख में लिखा है। वह अँगरेज़ी मासिक पुस्तक "ईस्ट ऐण्ड वेस्ट" की अप्रैल की संख्या में प्रकाशित हुआ है। लेखक के मत के अनुसार हमारी भी यह समझ है कि, हमारे देश को वर्तमान औद्योगिक दशा में, हम लोगों को कासानोवा इंस्टिट्यूट से बहुत सी लाभदायक बातों का ज्ञान प्राप्त होगा। इसके सिवा एक बात और ध्यान में रखने योग्य यह है कि, इस समय, हिन्दुस्तान में औद्योगिक विषयों की खूब चर्चा हो रही है। देश के नायकों का ध्यान औद्योगिक सुधारों की ओर लगा हुआ है। कांग्रेसवाले औद्योगिक प्रदर्शनियों के द्वारा देश के उद्धार का उद्योग कर रहे हैं। और गवर्नमेण्ट भी देशी कारीगरी और कलाकुशलता को पुनरुज्जीवित करने का उपदेश दे रही है। ऐसी अवस्था में यदि हमको यह मालूम हो जाय कि पश्चिमी देशों के लोगों ने इस विषय में क्या किया है और उन्होंने अपने उद्योग में कितनी सफलता प्राप्त की है तो उससे हमें अवश्य कुछ सहायता मिलेगी। इन्हीं बातों को सोच समझ कर हमने उक्त अँगरेज़ी लेख के आधार पर यह लेख लिखने का साहस किया है।

शाला का जन्म और उद्देश्य।

नेपल्स में छोटे छोटे लड़कों के लिये म्युनिसिपालिटी की प्राथमिक शालाएं हैं। वहां लड़कों को सिर्फ़ सात बरस की उम्र तक पढ़ाते हैं। इस शिक्षा से लड़कों को न तो पूरा पूरा लिखना पढ़ना आता है और न वे किसी प्रकार का अच्छा रोज़गार करने के योग्य होते हैं। परन्तु उन शालाओं में पढ़नेवाले लड़कों के मा बाप प्रायः दरिद्री होते हैं। अतएव उन्हें फिर किसी शाला में पढ़ने का अवसर नहीं मिलता; क्योंकि जब लड़के सात बरस की उम्र में शाला छोड़ देते हैं तब उनके मा बाप उन्हें शहर में कहीं भी मज़दूरी करने के लिए भेज देते हैं। यह लिखने की आवश्यकता नहीं है कि वे लड़के, उम्र भर, दरिद्रावस्था में रहकर, अत्यन्त कष्ट से दिन बिताते हैं। उनकी हीन-दशा की ओर, नेपल्स के रहनेवाले, सिनोर आलफ्रान्ज़ो डिला वेलीडि कासानोवा, नामके एक परोपकारी महाशय का ध्यान आकर्षित हुआ। वह रात दिन इसी बात को सोचता रहता था कि, म्युनिसिपालिटी के स्कूलों से निकलनेवाले सात बरस की उम्र के लड़कों को अधिक शिक्षा देने का क्या प्रबन्ध करना चाहिए। जब वे लड़के म्युनिसिपालिटी के स्कूलों से निकलते हैं तब यदि उनको कारीगरी का काम या कोई और रोज़गार सिखाया जाय तो वे अपना जीवन सुखसे बिता सकेंगे। इसी लिए सन् १८६४ ई० में उसने एक छोटी सी सभा स्थापित की। पहले पहल उस सभा ने यह काम आरम्भ किया कि, जब लड़के प्राथमिक शालाओं को छोड़ देते थे तब वे किसी दूसरी शाला में भरती कर दिये जाते थे, या किसी कारख़ाने में काम सीखने के लिये भेज दिये जाते थे। सभा उन लड़कों की हिफ़ाज़त और देखभाल भी भली भांति से करती थी; और सामाजिक तथा कुटुम्ब-सम्बन्धी लाभों की प्राप्ति के हेतु सप्ताह में एक दिन, रविवार को, सब लड़के व्याख्यान सुनने, गीत गाने और कसरत करने के लिए एक स्थान पर एकत्रित किये जाते थे। यह काम पांच वर्ष तक किया गया; परन्तु उससे लोगों को बहुत कुछ लाभ होता हुआ दिखाई नहीं दिया। कासानोवा का प्रधान अभिप्राय यह था कि शाला, कारख़ाना और घर की शिक्षा से जो पृथक् पृथक् लाभ होते हैं वे सब किसी एक संस्था में एकत्रित किये जावें। जब उसने देखा कि यह उद्देश्य उपर्युक्त व्यवस्था से सफल नहीं होता तब उसने शाला, कारख़ाना और गृहसम्बन्धी शिक्षा एक ही स्थान में देने का उद्योग आरम्भ किया। उसने एक नई उद्योग-शाला स्थापित की। यह बात सब लोगों को पसन्द आई और उसको सहायता भी मिलने लगी।

द्रव्यादि की सहायता।

नेपल्स की म्युनिसिपालिटी ने कासानोवा की औद्योगिक शाला के लिये अपनी एक इमारत दी

और उस शाला की प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ाने के लिये अपने शिक्षक दिये। इस प्रकार सन् १८६९ में इस औद्योगिक शाला का आरम्भ हुआ। यह औद्योगिक शाला इतनी लोकप्रिय हुई और इससे ग़रीब आदमियों का इतना लाभ हुआ कि, दस वर्ष के बाद, सन् १८८० ई० में उस देश की गवर्नमेण्ट ने अपनी सहानुभूति प्रगट करके उसको बहुत प्रशंसा की और हर एक प्रकार की सहायता देने की प्रतिज्ञा की। तब से अब तक उस शाला की प्रति दिन उन्नति ही होती जाती है। उस शाला के अनेक विद्यार्थियों ने राष्ट्रीयप्रदर्शनियों में कई बार पारितोषिक प्राप्त किये हैं। उस देश के सब लोग उस शाला को प्रेम, अभिमान और गौरव की दृष्टि से देखते हैं। इस समय उस शाला में ७०० विद्यार्थी हैं। सैकड़ों नये विद्यार्थियों की दरख़ास्तें आती हैं; परन्तु शाला में सात सैा से अधिक विद्यार्थियों के लिये स्थान न होने के कारण और दरख़ास्तें मञ्ज़ूर नहीं की जा सकतीं। इस शाला की उपयोगिता के सम्बन्ध में म्युनिसिपालिटी और गवर्नमेण्ट का पूर्ण विश्वास है। अतएव वे उस शाला के लिये और नई इमारतें देने का प्रबन्ध कर रहे हैं, जिससे उसमें १००० विद्यार्थी रह सकें।

इस शाला को अनेक मार्गों से द्रव्य की सहायता मिलती है। गवर्नमेण्ट से 'ग्रांट' मिलती है; बड़े बड़े व्यापारियों और कारख़ानेवालों से 'डोनेशन' (दान) मिलता है; सर्वसाधारण से चन्दा मिलता है और शाला में पढ़नेवाले छात्रों से फ़ीस मिलती है। फ़ीस बहुत ही कम ली जाती है, अर्थात् प्रत्येक छात्र से प्रतिमास केवल दस आने। यदि किसी छात्र का पिता जीवित न हो या किसी का भाई शाला में पढ़ता हो, तो उससे आधी फ़ीस ली जाती है। और यदि किसी के मा बाप, दोनों, जीवित न हों तो उससे कुछ भी फ़ीस नहीं ली जाती। शाला में छात्रों को हर महीने दस आने फ़ीस देने के सिवा और किसी प्रकार का ख़र्च नहीं करना पड़ता। उन्हें पुस्तक, काग़ज़, क़लम, स्याही, चित्रकारी का सामान, कारख़ानों में काम करने के लिए औज़ार वग़ैरह सब सामान शाला की ओर से मुफ़्त में दिया जाता है।

शाला का स्थान, गृह, अंतर्व्यवस्था, शिक्षा आदि

कासानोवा इन्स्टिट्यूट नेपल्स के मध्यभाग में है। उसके समीप ही नेपल्स का प्रसिद्ध अजायबघर है। यह शालागृह पहले धर्माधिकारियों का एक मठ था। इसमें बहुत से कमरे हैं। किसी में शाला की शिक्षा के लिए और किसीमें कारख़ानों का काम सीखने के लिए व्यवस्था की गई है। घर का मध्यभाग विशेषतः शाला की शिक्षा और चित्रकारी सीखने के लिए नियत किया गया है। वहां एक बहुत बड़ा दीवानख़ाना है, जिसमें सब लड़के इकट्ठे हो सकते हैं। इस दीवानख़ाने की दीवारों पर, छात्रों की कारीगरी दिखाने के लिए, उनके बनाये हुए अनेक पदार्थ टांगे हुए हैं। इससे देखनेवाले को यह बात भली भांति विदित हो जाती है कि शाला में छात्रों को किस प्रकार के काम सिखलाये जाते हैं। इमारत के पिछवाड़े एक बड़ा भारी आँगन है जहां सब छात्र शारीरिक व्यायाम (कसरत) के लिए एकत्रित होते हैं। इस आँगन के दोनों तरफ़ बड़े बड़े कारख़ाने हैं। सबसे बड़ा कारख़ाना एक मेकैनिकल यञ्जीनियरिङ्ग कम्पनी का है। यद्यपि इन इमारतों के कमरे कारख़ानों के काम के नहीं हैं, तथापि कारख़ानों के मालिक कासानोवा इन्स्टिट्यूट से अलग होना नहीं चाहते। यह बात विशेष ध्यान में रखने योग्य है। उस देश के व्यापारी, कासानोवा इन्स्टिट्यूट के साथ सम्बन्ध रखने में, अपना सम्मान और महत्व समझते हैं।

इस औद्योगिकशाला से लगे हुए जो बहुत से कारख़ाने हैं उनमें से कुछ के नाम यहां लिखे जाते हैं—यलक्ट्रिकल फ़िटर (बिजली का कारख़ाना)। फूल के बर्तन बनाने का कारख़ाना। टाइप ढालने का कारख़ाना और छापाख़ाना। लकड़ी पर नक़्श करने के काम का कारख़ाना। लकड़ी के काम का कारख़ाना। चाँदी के काम और बिजली से मुलम्मा

करने का कारख़ाना। जैाहरियों का कारख़ाना। घड़ीसाज़ी का कारख़ाना। ज्योतिःशास्त्रसम्बन्धी यन्त्रों का कारख़ाना। पदार्थविज्ञानसम्बन्धी यन्त्रों का कारख़ाना। टीन का कारख़ाना। लुहार का कारख़ाना। लकड़ी पर नक्श करके उसमें हाथी-दाँत ग्रैार धातु की चीज़ें जड़ने का कारख़ाना। मेकैनिकल यञ्जीनियर का कारख़ाना।

इस शाला में जो विषय सिखाये जाते हैं उनका वर्णन करने के पहले हम पाठकों का ध्यान नीचे लिखी हुई दो बातों की ग्रोर दिलाना चाहते हैं। उनसे यह विदित होगा कि नेपल्स की ग्रौद्योगिकशाला ग्रैार ग्रन्यान्य साधारण ग्रौद्योगिकशालाग्रों में क्या भेद है।

पहले, कासानोवा इन्स्टिट्यूट में, लड़कों को तीन वर्ष तक लिखना, पढ़ना, गणित, चित्रकारी ग्रादि साधारण बातें सिखलाई जाती हैं। उस समय उन्हें कोई रोज़गारसम्बन्धी विषय नहीं सिखाया जाता। तीन वर्ष के बाद परीक्षा लेकर लड़कों को ऊंचे दर्जे के क्लासों में चढ़ाते हैं जहां पाँच वर्ष तक उन्हें ग्रपनी ग्रपनी रुचि के ग्रनुसार कोई कला या रोज़गार का काम सिखलाया जाता है। उस समय उन्हें साहित्यसम्बन्धी कोई विषय नहीं सीखना पड़ता। कभी कभी चित्रकारी ग्रैार विज्ञानसम्बन्धी कुछ बातें ग्रवश्य सिखलाई जाती हैं। उनका सब समय शाला से लगे हुए कारख़ानों में स्वयं ग्रपने हाथों से काम करने में जाता है।

कासानोवा इन्स्टिट्यूट में किसी उद्योग या कला के सम्बन्ध में जो शिक्षा दी जाती है वह लड़कों को क्लास में बेञ्च पर बिठला कर किसी विद्वान् प्रोफ़ेसर के द्वारा नहीं; किन्तु लड़कों को कारख़ानों में किसी मुख्य कारीगर की निगरानी में ख़ुद काम करना पड़ता है। इस ग्रौद्योगिक-शाला का उद्देश्यही यह है कि यहां शिक्षा पाकर लड़के ग्रच्छे कारीगर हों जो ग्रपने हाथों से मिहनत करके ग्रपना पेट भर सकें। वे लड़कों को केवल तत्वों ग्रैार सिद्धान्तों का ज्ञान देकर पण्डित बनाना नहीं चाहते। ग्रन्यान्य ग्रौद्योगिकशालाग्रों में प्रायः बड़े बड़े विद्वान् प्रोफ़ेसर ग्रपने व्याख्यानों के द्वारा शिक्षा देते हैं। वहां न तो गुरूजी ख़ुद ग्रपने हाथ से कुछ काम करना जानते हैं ग्रैार न विद्यार्थियों को ग्रपने हाथ से कुछ काम करने का मौक़ा मिलता है—क्योंकि वहां कोई कारख़ाना नहीं रहता, सिर्फ़ एक लेबोरेटरी (प्रयोगशाला) रहती है।

उक्त वर्णन से यह बात पाई जाती है कि कासानोवा इन्स्टिट्यूट में सिर्फ़ तीन बरस तक, साधारण शालाग्रों की तरह, पुस्तकों द्वारा शिक्षा दी जाती है। उसके बाद पाँच वर्ष तक कारख़ानों में काम सिखलाया जाता है—ग्रर्थात् लड़कों को पाँच वर्ष तक कारख़ानों में उम्मेदवारी करनी पड़ती है। यही मुख्य शिक्षा है।

इस शाला की पढ़ाई का वर्णन।

कासानोवा इन्स्टिट्यूट में, नीचे लिखी हुई तीन शर्तों पर, लड़के भरती किये जाते हैं—(१) इस बात का विश्वास होना चाहिये कि लड़के को शाला की शिक्षा से लाभ होगा ग्रैार वह उसके नियमों का पालन करेगा। (२) लड़के के मा बाप, या पालन करनेवाले, इस बात पर राज़ी हों कि लड़के को कोई व्यवसाय सिखलाया जावे। (३) लड़के को शाला को ग्रारम्भिक परीक्षा पास करना चाहिये।

जब लड़के भरती किये जाते हैं तब पहिले तीन बरस तक उन्हें सिर्फ़ भाषा, भूगोल गणित ग्रैार कुछ चित्रकारी के विषय सिखलाये जाते हैं। भाषा की शिक्षा से उन्हें शुद्ध लिखना, पढ़ना, ग्रैार व्याकरण ग्रा जाता है। साथ ही जीवन के नित्य के उपयोगी विविध विषयों का भी थोड़ा थोड़ा ज्ञान उन्हें प्राप्त हो जाता है। भूगोल में सिर्फ़ यही बातें सिखलाई जाती हैं जैसे नेपल्स ग्रैार उसके ग्रासपास की बस्ती का वर्णन, इटाली देश का भूगोल, ग्रैार राजकीय, सामाजिक तथा ग्रौद्योगिक वर्णन, इत्यादि। गणित में विशेषतः माप तैाल के सम्बन्ध में शिक्षा दी जाती है, जो प्रत्येक व्यवसाय में उपयोगी होती है। चित्रकारी में पहले भूमिसम्बन्धी "ड्राइङ्ग" सिखलाते हैं; फिर पदार्थों के नमूने बनाना

सिखलाया जाता है। इतने समय में लड़कों को साधारण प्रकार की आवश्यक विद्या प्राप्त हो जाती है। तीसरे वर्ष के अन्त में प्राथमिक कक्षा की शिक्षा समाप्त करके लड़के कारख़ानों का काम सीखने को जाते हैं। जिस लड़के की जिस व्यवसाय में विशेष रुचि दिखाई देती है उसको उसी व्यवसाय की शिक्षा कारख़ानों में दी जाती है।

कासानोवा इन्स्टिट्यूट से लगे हुए जो कारख़ाने हैं उनमें इन बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। पहले, यह कि वे कारख़ाने ऐसे हों जहां लड़के अपनी अपनी रुचि के अनुसार किसी भी व्यवसाय का ज्ञान प्राप्त कर सकें। दूसरी बात यह कि, उन कारख़ानों के मुख्य कारीगर होशियार और ईमानदार हों। तीसरी, यह कि जो लड़के, इन्स्टिट्यूट की तरफ से, काम सीखने के लिए भेजे जांय, उनके सिवा और किसीको उन कारख़ानों में शिक्षा न दी जाय। चौथी, शाला के इंस्पेक्टरों को कारख़ानों में जाकर इस बात की देख भाल करने का अधिकार हो कि, विद्यार्थियों को उचित रीति से शिक्षा दी जाती है या नहीं; और विद्यार्थी अपना अपना काम भलीभांति सीखते हैं या नहीं।

ऊपर कहा गया है कि चौथे वर्ष से आठवें वर्ष तक विद्यार्थियों को कारख़ानों में काम सिखलाया जाता है। यथार्थ में यही समय उनकी शिक्षा का है कि जब वे अपनी रुचि के अनुसार किसी भी कला, उद्योग, और व्यवसाय का पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक कारख़ाने में मुख्यतः कुछ कारीगर ऐसे होते हैं जो सीखनेवालों को वहां का सब काम सिखलाते हैं। जब वे एक काम में प्रवीण हो जाते हैं तब उन्हें दूसरा काम सिखलाया जाता है। उनकी उन्नति स्वयं उनकी बुद्धि, योग्यता और कार्य-कुशलता पर अवलम्बित रहती है—वह किसी प्रकार के कृत्रिम नियमों या परीक्षाओं से रोकी नहीं जाती। किसी कला के सीख लेने में जितनी अधिक योग्यता वे दिखावेंगे उतना ही अधिक उन को लाभ होगा। जब वे कारख़ानों में कुछ अच्छी चीज़ें बनाने लगते हैं तब उन्हें, उनके श्रम के मूल्य के अनुसार, कुछ वेतन भी दिया जाता है। इस प्रकार आठवें वर्ष के अन्त में वे अपने अपने व्यवसाय में निपुण हो कर अच्छे कारीगर हो जाते हैं। तब उनको शाला की ओर से एक सारटिफ़िकट दिया जाता है। उस देश में कासानोवा इन्स्टिट्यूट के सारटिफ़िकट पानेवालों की बड़ी चाह होती है। उन्हें तुरन्त ही किसी न किसी कारख़ाने में काम मिल जाता है। जो होनहार और अपने काम में कुशल होते हैं उन्हें इन्स्टिट्यूट के कारख़ानों ही में नौकरी मिल जाती है। इस उद्योगशाला में शिक्षा पानेवाले, अपने समाज में, आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। क्योंकि वहां के कई उम्मीदवारों ने अपने स्वतन्त्र कारख़ाने खोले हैं और वे बड़ा भारी व्यापार कर रहे हैं। हम दृढ़ विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि इस प्रकार की सफलता और लोकप्रियता और किसी उद्योगशाला के सम्बन्ध में नहीं पाई जाती।

उपसंहार।

भारतवर्ष की वर्तमान शिक्षित-मण्डली का यह सिद्धान्त है कि इस देश की शिक्षा-प्रणाली में अनेक दोष हैं। हम समझते हैं कि मुख्य दोष यही है कि, इस शिक्षा-प्रणाली से विद्यार्थी सरकारी नौकरी के सिवा और किसी भी काम के नहीं रह जाते। हमारे शिक्षित लोगों में व्यवसाय-प्रियता बहुत कम दिखाई देती है। अतएव जो लोग वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से अप्रसन्न हैं, जो लोग हमारे युवकों की शिक्षा में कुछ सुधार करना चाहते हैं, वे प्रायः इसी बात पर ज़ोर दिया करते हैं कि हमारे देश में व्यवसाय, और कारीगरी आदि उद्योगों की शिक्षा बहुतायत से दी जानी चाहिये। क्या उन्हें नेपल्स के कासानोवा इन्स्टिट्यूट के उक्त वर्णन से कुछ लाभदायक बातें नहीं मालूम हो सकतीं? यदि हमारे पाठकों में से किसी एक का भी ध्यान इस महत्वगर्भित विषय की ओर आकर्षित होगा तो हम अपने को बहुत भाग्यवान समझेंगे।

माधवराव सप्रे।

चन्द्रदेव से मेरी बातें।

भगवान चन्द्र-देव! आपके कमलवत् कोमल चरणों में इस दासी का अनेक बार प्रणाम। आज मैं आपसे दो चार बातें करने की इच्छा रखती हूं। क्या मेरे प्रश्नों का उत्तर आप प्रदान करेंगे? कीजिए,—बड़ी कृपा होगी। देखो, सुनी अनसुनी सी मतकर जाना। अपने बड़प्पन की ओर ध्यान देना। अच्छा, कहती हूं,—सुनो।

मैं सुनती हूं, आप इस आकाश-मण्डल में चिर-काल से वास करते हैं। क्या यह बात सत्य है? यदि सत्य है, तो मैं अनुमान करती हूं कि इस सृष्टि के साथ ही साथ अवश्य आपकी भी सृष्टि हुई होगी। तब तो आप ढेर दिन के पुराने, बूढ़े, कहे जा सकते हैं। आप इतने पुराने हैं तो सही; पर काम सदा से एक ही, और एकही स्थान में करते आते हैं। यह क्यों? क्या आपके "डिपार्ट-मेण्ट" (महकमे) में "ट्रान्सफ़र" (बदली) होने का नियम नहीं है? क्या आप की "गवर्न-मेण्ट" पेन्शन भी नहीं देती? बड़े खेद की बात है। यदि आप हमारी न्यायशीला "गवर्नमेण्ट" के किसी विभाग में "सर्विस" (नौकरी) करते होते, तो अब तक आप की बहुत कुछ पदोन्नति हो गई होती। और ऐसे "पोस्ट" पर रहके भारत के कितने ही सुरम्य नगर, पर्व्वत, जङ्गल और झाड़ियों में भ्रमण करते। अन्त में इस वृद्ध अवस्था में पेन्शन प्राप्त कर काशी ऐसे पुनीत और शान्ति-धाम में बैठ कर हरिनाम स्मरण करके अपना परलोक बनाते। अहः, बड़ी भारी भूल हुई। भगवान चन्द्रदेव! क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए। आप तो अमर हैं; आपको मृत्यु कहां? तब परलोक बनाना कैसा? ओ हो! देवता भी अपनी जाति के कैसे पक्षपाती होते हैं! देखो न "चन्द्रदेव" को अमृत दे कर उन्होंने अमर कर दिया;—तब यदि मनुष्य होकर हमारे अँगरेज़ अपने जातिवालों का पक्षपात करें तो आश्चर्य्य ही क्या है? अच्छा, यदि आपको अँगरेज़ जाति की सेवा करना स्वीकार हो तो, एक "एप्लिकेशन" (निवेदन पत्र) हमारे आधुनिक भारत-प्रभु लार्ड कर्ज़न के पास भेज देवें। आशा है कि वे आपको आदर-पूर्व्वक अवश्य आवाहन करेंगे। क्योंकि आप अधम भारतवासियों के भांति कृष्णाङ्ग तो हैं ही नहीं, जो आप को अच्छी

नौकरी देने में उनको गौराङ्ग जाति कुपित हो उठैगी। और फिर, आप तो एक सुयोग्य, कार्यदक्ष, परिश्रमी, बहुदर्शी, कार्य्यकुशल और सरल स्वभाव महात्मा हैं। मैं विश्वास करती हूं, कि जब लार्ड कर्ज़न हमारे भारत के स्थायी भाग्य-विधाता बनकर आवैंगे, तब आपको किसी कमीशन का मेम्बर, नहीं तो किसी मिशन में भरती करके वे अवश्य ही भेज देवेंगे। क्योंकि, उनको कमिशन और मिशन, दोनो ही, अत्यन्त प्रिय हैं।

आपके चन्द्रलोक में जो रीति और नीति सृष्टि के आदि काल में प्रचलित थीं वेही सब अब भी हैं। पर यहां तो इतना परिवर्तन हो गया है कि भूत और वर्तमान में आकाश पाताल का सा अन्तर हो गया है।

मैं अनुमान करती हूं कि आपके नेत्रों की ज्योति भी कुछ अवश्य ही मन्द पड़ गई होगी। क्योंकि आधुनिक भारत-सन्तान लड़कपन ही से चशमा धारण करने लगी है; इस कारण आप हमारे दीन, हीन, क्षीण-प्रभ भारत को उतनी दूर से भली भांति न देख सकते होंगे। अतएव, आपसे सादर कहती हूं कि एक बार कृपाकर भारत को देख तो जाइये। यद्यपि मैं इस बात को जानती हूं कि आप को इतना अवकाश कहां,—पर आठवें दिन नहीं, तो महीने में एक दिन, अर्थात् अमावस्या को, तो आपको "हालीडे" (छुट्टी) अवश्य ही रहती है। यदि आप उस दिन चाहें तो भारत-भ्रमण कर जा सकते हैं।

इस भ्रमण में आप को कितने ही नूतन दृश्य देखने को मिलेंगे। जिसे सहसा देख कर आपकी बुद्धि ज़रूर चकरा जायगी। यदि आपसे सारे हिन्दोस्तान का भ्रमण शीघ्रता के कारण न हो सके तो केवल राजधानी कलकत्ता का देख लेना तो अवश्य ही उचित है। वहां के कल कारख़ानों को देख कर आपको यह अवश्य ही कहना पड़ेगा कि यहां के कारीगर तो विश्वकर्म्मा के भी लकड़दादा निकले। यही क्यों, आपकी प्रिय सहयोगिनी, दामिनी, जो मेघों पर आरोहण करके आनन्द से अठखेलियां किया करती हैं, वह बेचारी भी यहां मनुष्यों के हाथ का खिलौना हो रही है। भगवान निशानाथ! जिस समय आप अपनी विमल चन्द्रिका को बटोर मेघमाला अथवा पर्व्वतों की ओट से सिन्धु के गोद में जा छिपते हैं, उस समय यही नीरद-वासिनी, विश्व-मोहिनी सौदामिनी अपनी उज्वल मूर्ति से आलोक प्रदान कर, रात को दिन बना देती है। आपके देव-लोक में जितने देवता हैं, उनके वाहन भी उतने ही हैं,—किसी का गज किसी का हंस, किसी का बैल, किसी का चूहा इत्यादि। पर यहां तो सबका बोझ आपकी प्यारी चपला और अग्निदेव केही मत्थे मढ़ा गया है। क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्रिय, क्या वैश्य, क्या शूद्र, और क्या चांण्डाल, सभीके रथों का वाहन वही हो रही है। हमारे श्वेताङ्ग महा-प्रभु-गण को, जहां पर कुछ कठिनाई का सामना आपड़ा, झट उन्होंने "इलक्ट्रीसिटी" (बिजुली) को ला पटका। बस कठिन से भी कठिन कार्य्य उसके द्वारा वे सहज में सम्पादन कर लेते हैं; और हमारे यहां के उच्च शिक्षा प्राप्त युवक काठ के पुतलों की भांति मुह ताकते रह जाते हैं। जिस व्योमवासिनी विद्युत् देवी को स्पर्श तक करने का किसी व्यक्ति को साहस नहीं हो सकता, वही आज पराये घर में आश्रिता नारियों की भांति ऐसे दबाव में पड़ी है, कि वह चूं तक नहीं कर सकती। क्या करे? बेचारी के भाग्य में विधाता ने दासी-वृत्ति ही लिखा था।

हरिपदोद्भवा त्रैलोक्यपावनी सुरसरी के भी खोटे दिन आये हैं, वह भी अब स्थान स्थान में बन्धनग्रस्त हो रही है। उसके वक्षस्थल पर जहां तहां मोटे मोटे बृहदाकार स्तम्भ गाड़ दिये गये हैं!

कलकत्ता आदि को देखकर आपके देवराज सुरेन्द्र भी कहेंगे कि हमारी अमरावती तो इसके आगे निरी फीकी सी जान पड़ती है। वहां का ईडन गार्डन तो पारिजात-परिशोभित नन्दन-कानन को भी मात दे रहा है। वहां के विश्वविद्यालय

के विश्वश्रेष्ठ पण्डितों की विश्वव्यापिनी विद्या को देखकर वीणापाणि सरस्वती देवी भी कहने लग जांयगी, कि निःसन्देह इन विद्यादिग्गजों की विद्या चमत्कारिणी है। वहां के फोर्ट विलियम के फौजी सामान को देख कर, आपके देवसेनापति कार्तिकेय बाबू के भी छक्के छूट जांयगे। क्यों कि देवसेनापति महाशय देखने में ख़ास बङ्गाली बाबू से जँचते हैं। और उनका वाहन भी एक सुन्दर मयूर है। बस, इसीसे उनके वीरत्व का भी परिचय ख़ूब मिलता है। वहां के "मिन्ट" (टकसाल) को देख कर सिन्धुतनया आपकी प्रिय सहोदरा कमला देवी तथा कुवेर भी चकचका जायंगे। भगवान्, चन्द्रदेव! इन्हीं सब विस्मयोत्पादक अपूर्व्व दृश्यों का अवलोकन करने के हेतु आपको सादर निमंत्रित, तथा सविनय आहूत, करती हूं।

सम्भव है कि यहां आने से आपको अनेक लाभ भी हों। आप जो अनादि काल से निज उज्वल वपु में कलङ्क की कालिमा लेपन करके कलङ्की, शशाङ्क, शशधर, शशलांछन, आदि उपाधि-मालाओं से भूषित हो रहे हैं। सिन्धुतनय होने पर भी जिस कालिमा को आप आज तक नहीं धो सके हैं, वही आजन्म-कलङ्क शायद यहां के विज्ञानविद् पण्डितों की चेष्टा से छूट जाय। जब बम्बई में स्वर्गीय महाराणी विक्टोरिया देवी की प्रतिमूर्ति से काला दाग़ छुड़ाने में प्रोफ़ेसर गज्जर महाशय फलीभूत हुए हैं, तब क्या आपके मुख की कालिमा छुड़ाने में वे फलीभूत न होंगे?

शायद आप पर यह बात अभी तक विदित नहीं हुई कि आप, और आपके स्वामी सूर्य्य भगवान पर जब हमारे भूमण्डल की छाया पड़ती है, तभी आप लोगों पर ग्रहण लगता है। पर आपका तो, अब तक, वही पुराना विश्वास बना हुआ है कि जब कुटिलग्रह राहु आपको निगल जाता है तभी ग्रहण होता है। पर ऐसा थोथा विश्वास करना आप लोगों की भारी भूल है। अतः हे देव! मैं विनय करती हूं कि अब आप अपने हृदय से [illegible] भ्रम को जड़ से उखाड़ कर फेंक दें।

अब भारत में न तो आपके, और न आपके स्वामी भुवनभास्कर सूर्य्य महाशय ही के वंशधरों का साम्राज्य है, और न अब भारत की वह शस्य-श्यामला स्वर्णप्रसूता मूर्ति ही है। अब तो आप लोगों के अज्ञात, एक अन्य द्वीप-वासी परम शक्तिमान गौराङ्ग महाप्रभु इस सुविशाल भारत-वर्ष का राज्यवैभव भोग रहे हैं। अब तक मैंने जिन बातों का वर्णन आपसे स्थूल रूप में किया वह सब इन्हीं विद्याविशारद गौराङ्ग प्रभुओं के कृपाकटाक्ष का परिणाम है। यों तो यहां प्रति वर्ष पदवीदान के समय कितने ही राज्य-विहीन राजाओं की सृष्टि हुआ करती है; पर, आपके वंशधरों में जो दो चार राजा महाराजा नाम मात्र को हैं भी, वे काठ के पुतलों की भांति हैं। जैसे उन्हें उनके रक्षक नचाते हैं, वैसेही वे नाचते हैं। वे इतनी भी जानकारी नहीं रखते कि उनके राज्य में क्या हो रहा है;—उनकी प्रजा दुखी है, या सुखी?

यदि आप कभी भारतभ्रमण करने को आयें तो, अपने "फैमिली डाकृर" धन्वन्तरि महाशय को और देवताओं के "चीफ़ जस्टिस" चित्रगुप्त जी को साथ अवश्य लेते आयें। आशा है कि धन्वन्तरि महाशय यहां के डाकृरों के सन्निकट चिकित्सा सम्बन्धी बहुत कुछ शिक्षा लाभ कर सकेंगे। यदि प्लेग-महाराज (ईश्वर न करे) आपके चन्द्रलोक या देवलोक में घुस पड़ें, तो, वहां से उनको निकालना कुछ सहज बात न होगी। यहीं जब चिकित्सा शास्त्र के बड़े बड़े पारदर्शी उन पर विजय नहीं पा सकते, तब भला वहां आपके "देवलोक" में जड़ी बूटियों के प्रयोग से क्या होगा? यहां के "इण्डियन पीनल कोड" की धाराओं को देखकर चित्रगुप्त जी महाराज अपने यहां की दण्डविधि (क़ानून) को बहुत कुछ सुधार सकते हैं। और यदि बोझ न हो तो यहां से वे दो चार "टाइप राइटर" भी ख़रीद

[ह]ो जायं। अब प्लेग महाराज के अपार अनुग्रह से उनके आफ़िस में कार्य्य की अधिकता होवे, तब उससे उनकी "राइटर्स बिल्डिङ्ग" के "राइटर्स" के काम में बहुत ही सुविधा और सहायता पहुंचेगी। वे लोग दो दिन का काम दो घण्टे में कर डालेंगे।

अच्छा, अब मैं आपसे विदा होती हूं। मैंने तो आपसे इतनी बातें कहीं, पर खेद है आपने उनके अनुकूल या प्रतिकूल एक बात का भी उत्तर न दिया। परन्तु आपके इस मौनावलम्ब को मैं स्वीकार का सूचक समझती हूं। अच्छा, तो, मेरी प्रार्थना को कबूल करके एक दफ़ा यहां आइएगा ज़रूर। एक वङ्ग-महिला।

पुस्तक-परीक्षा।

चन्द्रकला-भानुकुमार नाटक। सरस्वती के पाठकों ने "मृत्युञ्जय" काव्य देखा है। वह सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। उसीके कर्त्ता राय देवी प्रसाद, बी० ए०, बी० एल०, ने यह नाटक बनाया है। इसका कथानक भी बहुत अच्छा है और रचना भी बहुत अच्छी है। जितने पात्र हैं उनके कार्य और उनकी भाषाएं सब उनके अनुरूप हैं। रसिकसमाज के एक सुयोग्य सभासद ने इसकी ख़ूबियां भी टिप्पणी में ख़ूब समझाई हैं। वस्तु-वर्णन में कहीं भी विच्छिन्नता नहीं होने पाई। इस नाटक की रचना में नाट्यशास्त्र के नियमों का भी ख़ूब निर्वाह किया गया है। राय साहब की कविता, सहृदयता और विद्वत्ता, हिन्दी जाननेवालों से छिपी नहीं है। अतएव इस नाटक के विषय में कुछ विशेष न कह कर सिर्फ़ इतनाही कह देना काफ़ी है कि यह राय साहब की सरस लेखनी का समुज्वल नमूना है। यदि किसी को कार्याधिक्य से बिलकुल ही फ़ुरसत न हो तो उसे इस नाटक की भूमिका तो ज़रूर ही पढ़ लेना चाहिए। नाटक में ७ अङ्क हैं; इससे उसका विस्तार कुछ बढ़ गया है। परन्तु खेलने में सुविधा होने के लिए इसके कुछ अंश के निकाल डालने की युक्ति भी राय साहब ने भूमिका में बतला दी है। दाम इसके रु० २) कुछ अधिक मालूम होते हैं।

जैनग्रन्थ-रत्नाकर। किसी समय जैनमत का इस देश में बहुत प्राबल्य था। उस समय इस धर्म्म के अनेक ग्रन्थ बने थे। उनमें बहुत से तो राजविप्लव में नाश हो गये। पर अब भी हज़ारों ग्रन्थ शेष हैं। अनेक ग्रन्थ पीछे से प्राकृत भाषा में भी बने हैं; और कुछ हिन्दी में भी हैं। इन्हीं ग्रन्थों को क्रम क्रम से प्रकाशित करने के अभिप्राय से जैनग्रन्थ-रत्नाकर नामक मासिक पुस्तक का आविर्भाव हुआ है। इस में जैन सम्प्रदाय के अच्छे अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित हुआ करते हैं। इस समय इसके ४ खण्ड हमारे सामने हैं। इन खण्डों में ब्रह्मविलास, दौलतविलास, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा, आप्तपरीक्षा और आप्तमीमांसा—ये पांच ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इनमें से पिछले दो संस्कृत में हैं। ये ग्रन्थ चिकने और पुष्ट काग़ज़ पर बहुत सुन्दरता से छापे गये हैं। किसी किसी में जिल्द भी बंधी है। जैनग्रन्थ-रत्नाकर के निकालने का उद्योग स्तुत्य है। प्राचीन और नवीन ग्रन्थरत्नों को नाश होने से बचाने के लिए इससे अच्छा और कोई उपाय नहीं हो सकता। ग्रन्थ-रत्नाकर जैनियों के काम की चीज़ है। बाबू पन्नालाल जैन, व्यवस्थापक, जैनग्रन्थ-रत्नाकर, गिरिगांव, बम्बई, को ५) वार्षिक मूल्य भेजने से इस रत्नाकर की प्राप्ति होती है।

प्रवासकुसुमावली। श्रीयुत शिवचन्द्र भरतियाजी कृत। यह इस कुसुमावली का पहला गुच्छ है। कुछ काल हुआ कवि ने राजपुताने में प्रवास किया था। उसीका वर्णन इस पुस्तक में है। पुस्तक पद्य में है। "मालती", "चातकी" इत्यादि दो एक और भी कवितायें इसके अन्त में हैं। इसकी छपाई बहुत अच्छी है। इण्डियन प्रेस ने बंबई के सुप्रसिद्ध निर्णय-सागर प्रेस को भी सफ़ाई और सुन्दरता में मात कर दिया है। बहुत ही मोटे और चिकने काग़ज़

पर चारों तरफ़ अच्छे बेल बूटे लगा कर इस कुसुमावली में सौरभ उत्पन्न करने का अच्छा यत्न किया गया है। इसमें क्रौन अठपेजी सांचे के २६ पृष्ठ हैं। दाम इसके चार आने हैं। इण्डियन प्रेस, प्रयाग, और कवि के पास, इन्दौर, में यह पुस्तक मिलती है।

✻

मेवार का इतिहास। "राजपूत" के सम्पादक कुँवर हनुमानसिंह रघुवंशी और ठाकुर पूर्णसिंह कृत। मैनेजर, राजपूत एँग्लो-ओरियण्टल प्रेस, आगरा, से प्राप्य। इतिहास बड़े काम की चीज़ है। जिस देश में इतिहास नहीं उस देश की शोभा नहीं। जो जाति अपने पूर्वजों की कीर्ति को इतिहास द्वारा फैलाने का प्रयत्न नहीं करती, वह जीवित होकर भी निर्जीवित बनी रहती है और उसके भी वंशज उसकी कीर्ति का प्रसार करने की चेष्टा नहीं करते। इतिहास की बड़ी महिमा है। इतिहास के बिना साहित्य संसार सूना रहता है। इतिहास की हिन्दी में बहुत कमी है। उसी कमी को पूरा करने के लिए आगरे के उत्साही राजपूत यत्नवान हुए हैं। यह पुस्तक उनके यत्न का पहला फल है। मेवार बहुत पुराना राज्य है। वहां के रानाओं की वीरता का वृतान्त सुनकर कायरों के मन में भी जोश आजाता है। यह इतिहास बड़े परिश्रम और खोज से लिखा गया है। टाड साहब के राजस्थान के सिवा और भी अनेक पुस्तकों से, इसके लिखने में, मदद ली गई है। पुस्तक पढ़ने और संग्रह करने के लायक़ है। वह कोई २५० पृष्ठों में समाप्त हुई है। हम सिफ़ारिश करते हैं कि हिन्दी के हितचिन्तक इस पुस्तक को लेकर प्रकाशकों का उत्साह बढ़ावें, जिसमें ऐसे ही ऐसे और भी इतिहास शीघ्र देखने को मिलें।

✻

रामचरितेन्दु प्रकाश। मिथिला धर्म्मसमाज स्कूल के प्रथमाध्यापक पण्डित गोपीनाथ कुँवर कृत। श्रीमान राजा कमलानन्दसिंह को अर्पित। १ रु० में पण्डित योगानन्दकुमार, चन्दनपट्टी, मुज़फ़्फ़रपूर से प्राप्य। इसमें रामायण की कथा गद्य में वर्णन की गई है। लिखने का ढङ्ग बहुत अच्छा है। उस में एक यह विशेषता है कि फ़ारसी, अरबी वग़ैरह विदेशी भाषाओं का एक भी शब्द नहीं आने पाया। पुस्तक, बाल-वृद्ध-वनिता, सब के पढ़ने लायक़ है। बीच बीच में तुलसीदास के पद्य भी बड़े मौक़े से दिये गये हैं। इससे पुस्तक की शोभा और भी बढ़ गई है। इसके अच्छे होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि श्रीयुत राजा कमलानन्दसिंह ने इसको स्वीकार किया है और समालोचना-द्वारा इसकी सुमुचित प्रशंसा भी की है।

स्वर्ण-पदक का उपहार

श्रीनगर (पुरनियां) के नरेश श्रीमान् राजा कमलानन्दसिंह के नाम से सरस्वती के सभी पाठक परिचित हैं। आपके कई गद्य-पद्य-मय लेख सरस्वती में छप चुके हैं; जीवनचरित भी आपका प्रकाशित हो चुका है। आप हिन्दी के कितने प्रेमी हैं, हिन्दी के लेखकों के उत्साह के कहां तक प्रवर्द्धक हैं, और हिन्दी-प्रचारक समाजों को कितनी सहायता देते हैं—यह बात हिन्दी जाननेवालों से छिपी नहीं है। आपकी सरस्वती पर सविशेष प्रीति है; उसको आप सदा स्नेह-शीतल दृष्टि से देखते हैं। आपने, अब, एक स्वर्ण-पदक (मेडल) देने का इरादा किया है। यह पदक आप हिन्दी के उस सुलेखक को देंगे जिसका लेख १९०५ ईसवी की सरस्वती के छठे भाग में छपने पर सबसे अच्छा समझा जायगा। आशा है, हिन्दी के लेखक अच्छे अच्छे लेख भेजकर इस राज-सम्मान-सूचक, और, साथही, हिन्दी लिखने के कौशल का सर्वोत्तम परिचायक पदक पाने की अवश्य चेष्टा करेंगे।

सम्पादक, सरस्वती।